इति श्रीविट्ठलेश्वरविरचिता
श्रीयमुनाष्टकविवृतिः
सम्पूर्णा ।

विवृतिटिप्पणम्

इतिश्रीमन्निजाचार्यकृपया परया युतः । **हरिदासश्चकारेदं टिप्पणं** विवृतौ प्रभोः ॥१॥
प्रसीदन्तु निजाचार्याः स्वदासे निजवंशगे । प्रयच्छन्तु स्वतो भावं यमुनासहिते हरौ ॥२॥

इति श्रीमद्वल्लभाचार्य-चरण-तामरस-परागाभिलाषि-
हरिदासप्रणीतं
श्रीयमुनाष्टकविवृतिटिप्पणं
सम्पूर्णम् ।

विवृतिविवृतिः

यदिह स्वमतिज-दोषादसदुक्तं तत् क्षमन्तां मे ॥१॥

इतिश्रीमत्प्रभुचरण-कृपाभिलाषुक-तद्दास-
पुरुषोत्तमविरचिता
श्रीयमुनाष्टकविवृतेर्विवृतिः
समाप्ता ।

अन्वयबोधिनी

प्रेरितेन कृतेयं श्रीमथुरानाथसूनुना ।
प्रीत्यै भूयाद्भगवतोः कालिन्दी-कृष्णदेवयोः ॥३–४॥ (युग्मम्) ।
इति श्रीमद्गोपीजन-सुख-पतेः पादयुगले ; मनो धृत्वा दीनं किसलयदलाभे विरचिता ।
सदा श्रीकृष्णास्यात्मज-चरणदेशे प्रपतिता; निजा भक्ता एनामनुदिनमुदारां विदधतु ॥५॥
कालिन्दीकृष्णयोः प्रीत्यै सुगमा**न्वयबोधिनी** । कृता तेन प्रसीदन्तु श्रीमदाचार्य-नन्दनाः॥६॥
श्रीमद्गोवर्द्धनधर-सेवायां प्रतिबन्धकाः । ये ते सर्वे प्रणश्यन्तु ममेति प्रार्थनं प्रभो ॥७॥

इतिश्रीमथुरानाथात्मज - श्रीद्वारकेशचरणविरचिता
सुगमान्वयबोधिनी
श्रीयमुनाष्टकविवृतिटीका
सम्पूर्णा ।

इतिश्रीविट्ठलेश्वरप्रभुचरणविरचितायाः **श्रीयमुनाष्टकविवृतेः विवरणत्रयं**

समाप्तम् ।

---

* श्रीः *

महाप्रभुश्रीमद्वल्लभाचार्यचरणप्रणीतम्

श्रीयमुनाष्टकम्

श्रीमत्प्रभुचरणविनिर्मित-श्रीयमुनाष्टकविवृति-सहितम्

गोस्वामिश्रीश्याममनोहरदीक्षितकृत-हिन्दीश्लोकान्वयार्थ-विवृत्यर्थ-भावार्थ-समेतम्

नमामि यमुनामहं सकलसिद्धिहेतुं मुदा;
मुरारि - पद-पङ्कज - स्फुरदमन्दरेणूत्कटाम् ।
तटस्थ-नव-कानन - प्रकट - मोद-पुष्पाम्बुना;
सुरासुर-सुपूजित-स्मरपितुः श्रियं बिभ्रतीम् ॥ १ ॥

गोस्वामिश्रीश्याममनोहरदीक्षितकृत

हिन्दी-श्लोकान्वयार्थ

सकल - सिद्धि - हेतुम्	सभी सिद्धियोंकी देनेवाली
मुरारि - पद - पङ्कज -	भगवान् मुरारिके चरणकमलकी
स्फुरदमन्द - रेणूत्कटाम्	प्रचुर चमकती रेणुओंकी बहुलतावाली
तटस्थ - नव - कानन -	तटपर स्थित नवीन वनराजियोंमें
प्रकट - मोद - पुष्पाम्बुना	मोद या हर्ष रूप प्रकट हुए पुष्पोंसे युक्त जलके कारण
सुरासुर - सुपूजित -	सुरों तथा असुरों द्वारा सुपूजित
स्मरपितुः श्रियम्	स्मरपिता श्रीकृष्णकी शोभाको
बिभ्रतीम् यमुनाम्	धारण करनेवाली श्रीयमुनाको
मुदा	मुदित होकर
अहम्	हम (महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य)
नमामि	नमस्कार करते हैं ॥ १ ॥

विश्वोद्धारार्थमेवाविर्भूतवृन्दावनप्रियाः ।
कृपयन्तु सदा तातचरणा मयि विट्ठले ॥

विविधलीलोपयोगिनीं कालिन्दीं स्तोतुकामाः, 'श्रीगोकुलेशे यथा जीवैः नमनातिरिक्तं न कर्तुं शक्यं तथा कालिन्द्याम् अपि' इत्याशयेन आदौ नमनमेव आहुः, **नमामि** इति । भगवता अष्टविधैश्वर्यं कालिन्द्यै दत्तम् इति ज्ञापनाय अष्टभिः श्लोकैः स्तुवन्ति ।

साक्षाद्भगवल्लीलोपयोगिदेहाप्ति-तल्लीलावलोकन-तद्रसानुभव-सर्वात्मभावादयः सकलसिद्धयो ज्ञेयाः । अत एव नमनं मुदेति[1] ।

जलदोषात्मकमुरस्य अरेः, पदपङ्कजयोः स्फुरन्तः, सेवोपयोगिदेहादि-सम्पादनोन्मुखा ये रेणवः, अमन्दाः=व्रजसुन्दरीवृन्द-चरणरेणुसाहित्येन अनल्पाः

गोस्वामिश्रीश्याममनोहरदीक्षितकृत

हिन्दी विवृत्यर्थ

वृन्दावनके प्रिय और वृन्दावनके प्रेमीके रूपमें प्रकट होनेवाले पितृचरण महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य विश्वके उद्धारहेतु मुझ विट्ठल (नाथ प्रभुचरण) पर सर्वदा कृपा करते रहें ॥१॥

श्रीगोकुलेशको जीव नमनके सिवा और कुछ भी कर पानेमें समर्थ नहीं है । ऐसे ही श्रीगोकुलेशकी विविध लीलाओंमें उपयोगिनी कालिन्दी-यमुनाको भी नमनके अलावा और क्या किया जा सकता है ? अतएव महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य सर्वप्रथम नमस्कारके द्वारा ही श्रीयमुनाकी स्तुति प्रारम्भ करते हैं : "मैं यमुनाको नमस्कार करता हूँ ।" भगवान्ने अपने अष्टविध ऐश्वर्य कालिन्दीको दिये हैं और महाप्रभु इस यमुनास्तोत्रको आठ श्लोकोंमें निबद्ध कर इसी अष्टविध ऐश्वर्यको सूचित करना चाहते हैं ।

श्रीयमुनाको 'सभी सिद्धियोंकी देनेवाली' कहा जा रहा है, ये सिद्धियाँ हैं : साक्षाद् भगवल्लीलामें उपयोगी बन सके ऐसी देह, भगवान्की विभिन्न लीलाओंका साक्षाद् अवलोकन कर पाना, उन लीलाओंमें व्यक्त होते रसकी अनुभूति कर पाना तथा सर्वात्मभाव इत्यादि । ये सभी सिद्धियाँ इनकी कृपा होनेपर सिद्ध हो जाती हैं । अतएव ऐसी सकल सिद्धियोंकी देनेवाली श्रीयमुनाको नमस्कार करना भी महान् हर्ष या मोद का विषय है ।

मुर-दैत्यको जलगत दोष माना गया है । भगवान् मुरके शत्रु होनेके कारण 'मुरारि' कहलाते हैं । श्रीयमुनामें जो वालुका दिखलाई देती है वह मुरारिके चरण-कमलकी परागरूप है । अतः इस यमुनारेणुसे भगवल्लीलोपयोगी देह शीघ्र ही सम्पादित

---

[1] १. 'मुदा' इति पाठः ।

ते, उत्कटाः=जलापेक्षया अधिकाः यत्र । एतेन दोषवत्त्वं भगवत्प्राप्तिविलम्बश्च अपास्तः । अग्रे स्पष्टम् ।

जलदर्शनस्य भगवत्स्मारकत्वं भावजनकत्वं च ज्ञापयितुं स्मरपितृपदम् ॥१॥

हिन्दी विवृत्यर्थ

हो सकती है । व्रजकी गोपिकाओंकी चरणरेणु भी इसमें (साथ) मिली हुई है । इस प्रकार भगवान् और भक्त दोनोंकी चरणरेणु मिली हुई होनेके कारण श्रीयमुनामें जलकी अपेक्षा रेणु ही अधिक है । भगवान् मुरारिकी चरणरेणुके कारण श्रीयमुनामें किसी भी प्रकारके दोषकी सम्भावना नहीं है और भक्त व्रजसुन्दरियोंकी चरणरेणुके कारण भगवत्प्राप्तिमें विलम्बकी सम्भावना भी नहीं है । तटपर स्थित नवीन वनराजिमें मोदरूप प्रकट हुए, पुष्पोंसे युक्त जलके कारण स्मरपिता श्रीकृष्णकी-सी शोभाकी बात तो स्पष्ट ही है ।

श्रीयमुनाका श्यामल जल दर्शनमात्रसे श्रीश्यामसुन्दरकी स्मृतिको जगाता है और भावोंको उद्बुद्ध करता है । श्रीकृष्णको 'स्मरपिता' कहकर महाप्रभु यही सूचित करना चाहते हैं ॥१॥

* श्रीः *

'श्रीयमुनाष्टकम्' तथा 'श्रीयमुनाष्टकविवृति' का

गोस्वामिश्रीश्याममनोहरदीक्षितविरचित

हिन्दी भावार्थ

जयति श्रीवल्लभार्यो जयति च विट्ठलेश्वरः प्रभुः श्रीमान् ।
पुरुषोत्तमश्च तैश्च निर्दिष्टा पुष्टिपद्धतिर्जयति ॥ १ ॥
स्वेषु पुष्टिकरं कारा - दैत्य - बुद्धि - तमस्करम् ।
नमस्करोमि तं श्यामसुन्दरं मत्प्रियङ्करम् ॥ २ ॥
श्रीवल्लभ-मताभ्यासे कृपया येन दीक्षितः ।
दीक्षितं तमहं नौमि श्रीतातचरणं सदा ॥ ३ ॥

पुष्टि-विश्वका उद्धार ही महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य तथा प्रभुचरण श्रीविट्ठलनाथ के अवतारका प्रमुखतम प्रयोजन है । पुष्टि-जीवोंको पुष्टि-प्रभुतक ले जानेवाली श्रीयमुनाके महत्त्व तथा स्वरूप को समझानेके लिए ही महाप्रभुने श्रीयमुनाष्टकका प्रणयन किया है । इसका प्रभुचरणकृत विवरण भी अन्ततः पुष्टिजीवोंके उद्धारकी कामनासे ही किया गया है । अतएव प्रभुचरण महाप्रभुसे पुष्टिविश्वोद्धारकी प्रार्थना करते हैं : "तातचरण विश्वके उद्धार हेतु मुझपर सर्वदा कृपा करते रहें ।"

हिन्दी भावार्थ

यह प्रार्थना दो प्रकारसे की जा रही है : विश्वोद्धारके हेतु महाप्रभु सदैव प्रभुचरणपर कृपा करते रहें अथवा सदा विश्वोद्धारके हेतु ही महाप्रभु प्रभुचरणपर कृपा करते रहें। प्रथम कल्पमें 'सदैव' क्रियाविशेषणपर भार है तथा द्वितीय कल्पमें 'विश्वोद्धार' क्रियाफलपर भार है। इस प्रकारकी प्रार्थना करनेसे यह सिद्ध होता है कि प्रभुचरण पुष्टिजीवोंके उद्धारके लिए कितने कृपाशील और तत्पर हैं, तथा पुष्टिजीवोंके उद्धारको वे कितनी बड़ी आवश्यकता मानते हैं।

महाप्रभुने अपने अवतारका प्रयोजन स्वयं ही "अथ तस्य" (सुबो० १।१।१ का० ५) में तथा "सर्वोद्धारप्रयत्नात्मा" (तत्त्वा० प्र० ११ का० १) में स्पष्ट दिखलाया है। प्रभुचरणके अवतारका प्रयोजन उनके 'विट्ठल' नामनिर्वचनसे ही ध्वनित हो जाता है "विदा ठान् लाति इति विट्ठलः" अर्थात् वे निःसाधन अज्ञानी जीवोंपर भी कृपा करनेवाले हैं। विट्ठलका पुष्टिरूप यदि पुष्टिविश्वके उद्धारमें यत्नशील न हो तो (अन्यथा) उद्धार कैसे सम्भव होगा ?

कृष्ण वृन्दावनप्रिय हैं। सारे वृन्दावनमें वही सबके प्रिय हैं। व्रजभक्त भी वृन्दावनप्रिय हैं क्योंकि सभी व्रजभक्तोंको वृन्दावनके साथ निरतिशय स्नेह है। महाप्रभु भी वृन्दावनप्रियके रूपमें आविर्भूत हुए हैं। इस तरह भगवान् श्रीकृष्ण एवं व्रजभक्त दोनोंके साथ महाप्रभुकी समानता या अभिन्नता ध्वनित होती है। अतएव प्रभुचरण श्रीवल्लभाष्टकमें—"वस्तुतः महाप्रभु श्रीकृष्ण ही हैं" कहकर महाप्रभुका कृष्णसे अभेद दिखलाते हैं और इसीलिए सर्वोत्तम स्तोत्रमें भी कहा गया है कि "महाप्रभुका श्रीअङ्ग श्रीमद्भागवतमें सारभूत जो रासस्थित गोपिकाओंका भाव है उससे परिपूरित है।" इस तरह महाप्रभुके दो रूप हैं—वे भक्तरूप भी हैं और भगवद्रूप भी। इनकी कृपाप्रार्थना करनेके कारण एक नमनरूप मङ्गलाचरण सम्पन्न हुआ।

पुष्टिसृष्टिके जीवोंका उद्धार उन्हें भजनानन्दकी प्राप्ति होनेपर ही सम्भव है। अतः भक्ति, उसमें आनेवाले प्रतिबन्धकी निवृत्ति तथा उस निवृत्तिके उपाय आदि सभी कुछ अर्थज्ञानके सहित यमुनाष्टकके पाठ करनेसे सम्पन्न हो जावेंगे। अतः यमुनाष्टकमें श्रीयमुनाके स्वरूपका तथा इनकी पुष्टिभक्तिमें उपकारकता और कृपालुता आदि गुणधर्मोंका भी वर्णन प्रथम श्लोकमें किया जा रहा है।

श्रीकृष्णकी किसी एक लीलामें ही श्रीयमुनाका सम्बन्ध सीमित हो ऐसा नहीं है; वे तो श्रीकृष्णकी अनेकविध लीलाओंमें उपयोगिनी हैं। अतः इस यमुनाष्टक स्तोत्रद्वारा स्तुति करनेवाले पुष्टिजीवपर श्रीयमुना प्रसन्न होकर उसे उसके अधिकारानुरूप भगवल्लीलासे जोड़ देती हैं।

हिन्दी भावार्थ

गोकुलके सभी गोप-गोपिकायें निःसाधन थे। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है कि वे दिन भर सांसारिक कामोंमें उलझे रहने और रातको थककर सो जाने वाले लोग थे, फिर भी भगवान्‌ने उन्हें भजनानन्दकी प्राप्ति करायी। अतएव गोकुलेश श्रीकृष्ण तो वस्तुतः निःसाधनफलात्मा हैं। ऐसे निःसाधनजीवोंके फलरूप भगवान्‌को नमनके सिवा और क्या किया जा सकता है ? जिस प्रकार श्रीगोकुलनाथको नमनसे अधिक कुछ भी कर पाना सम्भव नहीं है उसी प्रकार उनकी विविध-लीलामें उपयोगिनी श्रीयमुनाको भी नमनके सिवा और क्या किया जा सकता है ? 'नमन' का अर्थ है 'मन, वचन और तन से आदर भावके साथ किसीके समक्ष झुकना।' जैसे निःसाधन भावसे श्रीगोकुलेशको नमन करना चाहिए वैसे ही श्रीयमुनाको भी। इससे यह सूचित होता है कि श्रीगोकुलेशके अन्य गुणधर्म भी श्रीयमुनामें विद्यमान हैं। भगवान्‌के अष्टविध ऐश्वर्यका सूचन करनेवाली इस स्तोत्रके श्लोकोंकी आठ संख्याका तात्पर्य यही है कि भगवान्‌के अन्य अनेक गुणधर्म भी श्रीयमुनामें समानरूपसे मिलते हैं। प्रयोजनविशेषवश प्रयुक्त होनेपर संख्या भी सार्थक मानी जाती है, यह शास्त्रीय विचार पूर्वमीमांसाके जातेष्ट्यधिकरणमें किया गया है।

श्रीगोकुलेशके अष्टविध ऐश्वर्यकी स्थिति श्रीयमुनामें, उनके तीर्थरूप आध्यात्मिक या जलरूप आधिभौतिक स्वरूपमें नहीं प्रत्युत आधिदैविक स्वरूपमें ही विवक्षित है। अतएव श्रीमद्भागवतके एकादशस्कन्धमें वर्णित अणिमादि अष्टविध ऐश्वर्य भी यहाँ विवक्षित नहीं हैं। यहाँ तो इसी यमुनाष्टकके इन आठ श्लोकोंमें वर्णित आधिदैविक ऐश्वर्य ही विवक्षित है। सनकादि महर्षियोंमें अणिमादि अष्टविध ऐश्वर्य तो मिल जायेंगे परन्तु यहाँ इस स्तोत्रमें वर्णित अलौकिक ऐश्वर्य अन्यत्र दुर्लभ है। श्रीयमुनामें, यहाँ वर्णन की जानेवाली अनेकविध पुष्टिमार्गीय सिद्धियोंके दानका सामर्थ्य है जो अलौकिक-आधिदैविक ऐश्वर्यके बिना सम्भव नहीं है।

ये आधिदैविक अष्टविध ऐश्वर्य इस तरह समझने चाहिए।

१. श्रीयमुना पुष्टिमार्गीय सकल सिद्धि—साक्षाद् भगवत्सेवोपयोगी देह, साक्षाद् भगवल्लीलावलोकन, रसानुभव तथा सर्वात्मभाव इत्यादि—की देनेवाली हैं।

२. श्रीयमुना भगवान्‌में भक्तकी रति बढ़ानेवाली हैं।

३. जीव और भगवान्‌के सम्बन्ध जुड़ पानेमें जो प्रतिबन्ध या विघ्न आ सकते हैं उन्हें श्रीयमुना दूर करती हैं। इससे पुष्टिजीव परमात्माके पुष्टिस्वरूपको प्राप्त करने योग्य बन जाता है।

४. श्रीयमुना और भगवान् श्रीकृष्ण के गुणधर्म समान हैं, अतएव श्रीयमुना अनायास भगवत्सम्बन्ध स्थापित करा देती हैं।

हिन्दी भावार्थ

५. जो जीव भगवान्‌के प्रिय हैं, श्रीयमुना उनके कलिदोषोंका निवारण करती हैं ।
६. श्रीयमुनाके सेवनसे पुष्टिजीव भगवान्‌के उत्कृष्ट प्रेमपात्र बन सकते हैं, जैसे गोपिकायें बन पायीं ।
७. श्रीयमुनाद्वारा 'तनु-नवत्व' नामक फलदान भी सम्भव है ।
८. यमुनाजलमें प्रभु अनेकविध लीलाविहार करते हैं, अतः इस जलमें प्रभुके श्रम-जल-कण भी सम्मिलित हैं, फलतः यमुनाजलके सम्पर्क प्रभुके साक्षात् अङ्गसंस्पर्शके ही बराबर है ।

ये सारे ऐश्वर्य लीलासृष्टिस्थ जीवोंके लिए श्रीयमुना प्रकट करती ही हैं; अपने आधुनिक भक्तोंके लिए भी समस्त दुरित-क्षय, मुकुन्द-रति, सकल-सिद्धि, मुर-रिपु सन्तोष एवं स्वभाव-विजय जैसे एक या अधिक फल भगवदिच्छानुसार देती ही हैं । ये फल इसी स्तोत्रके अन्तिम श्लोकमें वर्णित हुए हैं ।

श्रीयमुना ऐसी दीनबन्धु और सिद्धिदा हैं कि नमन यद्यपि दैन्यभावका द्योतक होता है तथापि यह परम आनन्द या हर्ष के साथ किया जा रहा है ।

यद्यपि श्रीयमुना दीनबन्धु हैं किन्तु जीव इतने दोषोंसे भरे हुए हैं कि कभी दैन्य भी दयाके भाव जगानेमें अक्षम हो सकता है यह आशङ्का होती है । ऐसी स्थितिमें इस यमुनास्तुति द्वारा नमन या दैन्य प्रकट करना भी व्यर्थ हो सकता है । किन्तु यह शङ्का ठीक नहीं है, क्योंकि श्रीयमुनाका तो स्वरूप एवं स्वभाव ही विलक्षण है । यमुनाजलमें जलकी अपेक्षा भगवान् मुरारिके चरणोंकी रेणु ही अधिक स्फुरित होती है, अतएव यमुनाजलमें दोषोंको दूर करनेका भी विलक्षण सामर्थ्य है ।

भगवान्‌को यहाँ 'मुरारि' कहनेके बजाय 'असुरारि' भी कहा जा सकता था, फिर भी 'मुरारि' कहनेका विशेष तात्पर्य यह है कि मुरको जलदोषरूप माना गया है ।

संस्कृत भाषामें 'ड' और 'ल' में अभेद माना जाता है, अतः अज्ञानी, मूढ या जडबुद्धिवाले जीवोंके भगवत्प्राप्तिमें विघ्नरूप गम्भीर दोष भी इस जलके द्वारा दूर हो सकते हैं, क्योंकि इस जलमें मुरारिकी चरण-रेणु मिली हुई है । साथ ही साथ यह बात यहाँ और समझ लेनी चाहिए कि जड या मूढ जीवके दोष तो निवृत्त हो सकते हैं परन्तु दम्भ करनेवाले अश्रद्धालु, पापी, नास्तिक, संशयात्मा, हैतुक या कुतार्किकोंके दोष दूर नहीं हो सकते ।

भगवान् श्रीकृष्ण सुरभाववाले तथा असुरभाववाले दोनों तरहके जीवोंद्वारा की गयी पूजा स्वीकार करते हैं । श्रीयमुनाकी भी ऐसी ही स्मरपिता श्रीकृष्णकी-सी शोभा, अपने तटपर उगनेवाले वृक्षोंसे गिरे फूलोंवाले जलके कारण दिखलाई देती है

हिन्दी भावार्थ

असुरोंद्वारा की गयी पूजा भी जब भली-भाँति स्वीकार की जाती हो तो यह आश्वासन आसुरावेशवाले आधुनिक जीवोंके लिए कम नहीं है । फलतः हमारी स्तुतिरूप पूजा भी श्रीयमुना शीघ्र ही स्वीकार करेंगी—हमारे भी दोष दूरकर हमें भगवत्प्राप्ति-योग्य बनायेंगी, यह ध्वनित होता है ।

'स्मर-पिता' कहनेसे भगवान्‌के प्रद्युम्नके पिता होनेकी बात सबसे पहले ध्यानमें आती है, किन्तु यहाँ भगवान्‌को इस अर्थमें 'स्मर-पिता' कहना अभीष्ट नहीं है । यहाँ तो तात्पर्य यह है कि भगवान्‌का स्वरूप भगवद्विषयक अलौकिक काम या स्मर को प्रकट करता है अतः इसी अर्थमें यहाँ भगवान्‌को 'स्मर-पिता' कहा गया है । भगवान्‌का स्वरूप ही ऐसा है कि स्मरण करने मात्रसे निष्काम भी सकाम बन जाता है—आत्माराम निर्ग्रन्थ मुनि भी भगवत्स्वरूपमें आसक्तिकी ग्रन्थिसे बँधने लग जाता है । इसीलिए उपनिषद्‌में कहा गया है : "मुझे स्मरण करनेपर निष्काम भी सकाम बन जाता है ।" श्रीयमुनाकी शोभा भी श्रीकृष्ण जैसी ही है । अतः श्रीयमुनाका दर्शन भी पुष्टिजीवोंके सारे दोषोंको दूरकर उनमें भगवद्भाव जगानेवाला होता है । इस तरह (१) दोष दूर करने और (२) भगवद्भाव जगाने की द्विविध प्रक्रिया द्वारा श्रीयमुनाके प्रथम ऐश्वर्य—सकलसिद्धियोंके दानके दो सहकारी गुणधर्मोंका ही वर्णन हुआ है ।

इन सभी ऐश्वर्योंके प्रकट होनेकी शर्त है : अनुग्रहवश भगवान्‌का किसी जीवमें पुष्टिमार्गीय अधिकार स्थापित करना । जो जीव पुष्टिमार्गमें प्रभुद्वारा अङ्गीकृत हुए हैं उन्हींके लिए श्रीयमुना अपना दिव्य अलौकिक ऐश्वर्य प्रकट करती हैं ॥१॥

◆

कलिन्दगिरिमस्तके पतदमन्दपूरोज्ज्वला;
विलासगमनोल्लसत् - प्रकट-गण्ड-शैलोन्नता ।
सघोषगतिदन्तुरा समधिरूढदोलोत्तमा;
मुकुन्द-रति-वर्द्धिनी जयति पद्मबन्धोः सुता ॥ २ ॥

हिन्दी श्लोकान्वयार्थ

कलिन्द-गिरि-मस्तके	'कलिन्द' नामक पर्वतके शिखरपर
पतदमन्दपूरोज्ज्वला	गिरते समय तीव्र वेगके कारण उज्ज्वल फेन तथा प्रवाह वाली

हिन्दी-श्लोकान्वयार्थ

विलास-गमनोल्लसत्- प्रकट-गण्ड-शैलोन्नता	पर्वतके टूटे हुए छोटे-बड़े शिला-खण्डोंको अपनी विलासपूर्ण गतिसे ऊपर उछालकर प्रकट करनेमें स्वयं उन्नत होकर चलनेवाली
सघोष-गति-दन्तुरा	जल-प्रवाहकी ध्वनि या घोष द्वारा विविध रस-भावोंको प्रकट करती हुई
समधिरूढ-दोलोत्तमा	ऊँची-नीची शिलाओंपरसे गुजरनेके कारण उत्तम डोलीपर या पालकीमें सवार होकर पधारती हुई
मुकुन्द-रति-वर्द्धिनी	भगवान् मुकुन्दकी रतिको बढ़ानेवाली
पद्मबन्धोः सुता	कमलके सखा सूर्यकी पुत्री
जयति	श्रीयमुनाका उत्कर्ष है ॥२॥

आविर्भावप्रकारम् आहुः, **कलिन्द-इति**। रविमण्डलाद् अतिदूराद् **गिरिमस्तके पाते** फेनेन प्रवाहजलेन च **उज्ज्वला**।

उच्चनीचशैलारोहावरोहौ विलासगतिरूपौ। तत्र उल्लसन्तः शोभां प्राप्नुवन्तः प्रवाहवेगेन उच्चैः क्षिप्ता अत एव प्रकटाः, सर्वेषां दृश्याः, तैः तादृशैः तथा।

उच्चतः पाते शोभाम् उक्त्वा ततो विषमभूमि-गति-शोभाम् आहुः, **सघोष-इति**। **दन्तुर**-शब्देन विविधविकाररूपत्वम् उच्यते। **'विपुल-पुलकभर-दन्तुरितम्'** (गीतगो० सर्गः ११, प्रबन्धः २२, पद्यम् ७), **'केतकिदन्तुरिताशे'**[1] (गीतगो० सर्गः १, प्रबन्धः ३, पद्यम् ६) इत्यादि जयदेवोक्तिः अपि। व्रजजन-गोवृन्दादि-विविधगतिभिः तादृशीव। **घोषः** शब्दो व्रजो वा। अनतिस्थूलशिलासु गतिशोभया[2] असमधिरूढेव। **समधिरूढदोलोत्तमा**।

ततो भूमौ आगत्य **मुकुन्दरतिवर्द्धिनी** जाता। यतो रसाकर-सखस्य **सुता**, अतः स्वयम् अपि रसात्मिका इति भावः ॥२॥

हिन्दी विवृत्यर्थ

अति दूर रवि-मण्डलसे कलिन्दगिरिके शिखरपर पड़नेसे पैदा होते फेन और प्रवाह के कारण श्रीयमुनाका श्यामल जल भी उज्ज्वल दिखलाई देने लगता है। ऊँची-नीची शिलाओंपर आरोहण और अवरोहण करनेमें श्रीयमुनाकी गतिमें एक विलास प्रकट होता है। पर्वतसे टूटकर जलके प्रवाहके साथ बहनेवाली छोटी-बड़ी शिलाओंको अपनी विलासयुक्त गतिसे जब श्रीयमुना जलके बाहर उछालती हैं तब वह स्वयं भी उन्नत होकर गमन करती हुई लगती हैं।

ऊँचाईसे पर्वतपर गिरनेकी शोभाकी तरह ऊँची-नीची या विषम भूमिपर भी श्रीयमुनाका गमन बहुत शोभास्पद है। अहीरोंके गाँव या घोष से जब व्रजजन और गोवृन्द श्रीयमुनाके तटपर आवागमन, क्रीडा या खान-पान के लिए आते हैं तो इनमें रस-भावोंके विविध विकार प्रकट होते हैं। अथवा 'घोष' का अर्थ ध्वनि भी होता है। अतः तीव्र-प्रवाहवश उत्पन्न होते जलरव या घोष के कारण भी श्रीयमुनामें रसभावोंके विविध विकार प्रकट होते हैं। 'दन्तुर' का अर्थ 'विविध विकार' भी होता है। "विपुल-पुलक-भर-दन्तुरितम्" (गीतगो० सर्ग ११, प्रबन्ध २२, पद्य ७) और "केतकिदन्तुरिताशे" (गीतगो० सर्ग १, प्रबन्ध ३, पद्य ६) में जयदेव भी इसी अर्थमें 'दन्तुर' शब्दका प्रयोग करते हैं। छोटी-बड़ी पर्वत-शिलाओंके ऊपर होकर बहनेके कारण किसी डोलीपर सवार न होनेपर भी श्रीयमुना उत्तम डोली या शिविका पर आरूढ-सी दिखलाई देती हैं। विषम भूमिपर श्रीयमुनाकी ऐसी शोभावाली गति होती है।

समतल भूमिपर आकर श्रीयमुना भगवान् मुकुन्दकी रतिको बढ़ानेवाली बन जाती हैं क्योंकि श्रीयमुना रसके आकर कमलके सखा रविकी पुत्री हैं अतः स्वयं भी रसात्मिका हैं। इसी तात्पर्यसे सूर्यको 'पद्मबन्धु' कहा गया है ॥२॥

हिन्दी भावार्थ

भारतवर्षमें अनेक नदियाँ हैं और यमुना-नदी भी उनमेंसे एक है। ऐसी स्थितिमें केवल यमुनाकी इतनी अतिशय स्तुतिका प्रयोजन क्या ?

अनेक नदियोंके होनेपर भी यमुनानदीकी कुछ अपनी विलक्षणता है; क्योंकि अन्य नदियोंकी तरह न तो यमुनाका उद्भव है, न अन्य नदियोंकी तरह प्रवाह ही, और न अन्य नदियोंकी तरह यमुनानदी किसी लौकिक सागरमें ही लीन होती है। अतः आधिभौतिक रूपमें यमुनाका जलप्रवाह यदि अन्य नदियोंके जलप्रवाहकी तरह दिखलायी पड़ता भी हो तो एतावता यमुनाके आधिदैविक स्वरूपकी महत्तामें कोई अन्तर नहीं पड़ता।

भगवान्के विराट स्वरूपमें तत्तद् अंगोंमें तत्तद् देवता आदिके विद्यमान होनेका वर्णन मिलता है;

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत। (ऋक्सं० १०।९०।१३)।
यस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वं
यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः। (महानारायणोप० १।२)।

---

[1] 'केतकीदन्तुरिताशं' इति पूर्वमुद्रितपाठः। [2] द्रष्टव्या १६ पृष्ठस्थिता टिप्पणी १.

हिन्दी भावार्थ

तदेवाग्निस्तद्वायुस्तत्सूर्यस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रममृतं तद्ब्रह्म तदापः स प्रजापतिः॥ (महानारायणोप० १।७)।

यह वर्णन उक्त देवताओंके भी मूलभूत आधिदैविक स्वरूपका वर्णन है। वेदोंमें जब किसी एक देवरूपका सर्वसमर्थ परमात्माके रूपमें वर्णन होता है तो वह इन्हीं विराट् स्वरूपान्तर्गत भगवदवयवरूप परमात्मरूपोंका वर्णन होता है। अर्जुनको भगवान्ने जैसी दिव्यदृष्टि प्रदान की थी वैसी दिव्य दृष्टिके अभावमें इन रूपोंका श्रौत-वचनोंके प्रमाणसे परोक्षज्ञान तो हो सकता है पर प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं।

इन आधिदैविक रूपोंके कारण वैदिक शब्द सार्थक बनते हैं। शब्दोंके कोई आश्रयभूत अर्थ न होनेपर निराश्रित शब्द अर्थहीन बन जाते हैं। क्योंकि वैदिक शब्द नित्य होते हैं अतः उनके आश्रयभूत नित्य अर्थकी कल्पना करनी ही पड़ती है। अन्यथा यह अलौकिक शब्दराशि कभी सार्थक और कभी निरर्थक बन जायेगी। वेदके प्रत्येक शब्दका प्रथम एवं सनातन अर्थ परमात्मा अर्थात् विराट् स्वरूपके तत्तद् अवयव होते हैं। सृष्टिकालमें अपने इन निजी नामोंके अर्थरूपेण परमात्मा आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक आकार भी ग्रहण करता है। अतएव कहा गया है,

सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरः नामानि कृत्वाभिवदन् यदास्ते। (महावाक्यो० ३)।

अतः परमात्माके विभिन्न आधिभौतिक या आध्यात्मिक रूप वैदिक शब्दोंके द्वितीय अर्थ होते हैं प्रथमार्थ तो आधिदैविक रूप ही होते हैं। इन आधिदैविक रूपोंको, जो परमात्माके विराट् स्वरूपके अवयवभूत हैं, 'आधिदैविकी सृष्टि' कहा जाता है। आधिदैविकी सृष्टि वैदिक शब्दोंका आश्रयभूत अर्थ होती है। यह 'देवताओंके विग्रह—वास्तविक आकार—होते हैं कि नहीं' इस विषयमें, ब्रह्मसूत्र (१।३।२८) में, जो विचार किया गया है वहाँ निरूपित हुआ है।

इस स्पष्टीकरणके बाद अब यह समझना आसान हो जाता है कि जिस रविमण्डलसे यमुनाके प्रादुर्भावका उल्लेख प्रभुचरणने किया है वह भौतिक रविमण्डल, जो आकाशमें हमें दिखलायी देता है, वह नहीं है, अपितु इस दिखलायी देनेवाले रविमण्डलके आध्यात्मिक स्वरूप वेदत्रयी[1] तथा इस दिखलायी देनेवाले रविमण्डलमें अन्तर्यामीके रूपमें स्थित हिरण्मय-आनन्दमय परमात्मा नारायणसे यमुना प्रकट हुई हैं। आधिभौतिक रविमण्डलमें अन्तर्यामीके रूपमें स्थित नारायण, सूर्यलोकके अभिमानी अधिदेवसे भिन्न, स्वयं परमात्माके ही एक विशिष्ट रूप हैं। यह 'अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्' (ब्रह्मसूत्र १।१।१९) के अणुभाष्यमें प्रतिपादित हुआ है।

पद्मपुराणके यमुना-माहात्म्यमें भी ऐसा वर्णन मिलता है। वहाँ यह कहा गया है कि ऋक्, यजुः और साम की त्रयीको 'आदित्य' कहा जाता है। इस वेदत्रयीका सम्यग्ज्ञान तथा उसे प्रमाण मानकर अपने कर्तव्यका निर्णय 'संज्ञा' कहलाता है। इस संज्ञासे जो धर्म उत्पन्न होता है उसे 'धर्मराज' कहते हैं। परमात्माके परमधाम अक्षरब्रह्ममें विराजित अगणित-सच्चिदानन्दरूप पूर्ण-पुरुषोत्तम, जिन्हें उपनिषदोंमें 'रसरूप-ब्रह्म' कहा गया है वही श्रीयमुना भी हैं।

इस वचनसे अन्य नदियोंकी तुलनामें श्रीयमुनाका वैशिष्ट्य स्पष्ट ही सिद्ध हो जाता है।

महर्षि वसिष्ठके वचन भी मिलते हैं, 'प्रतिदिन सूर्य अपनी प्रिय पुत्री यमुनाको गोदमें लेकर उदयाचलसे अस्ताचलतक घुमाने लाते हैं। अतः यमुना भी प्रतिदिन सूर्योदयके समय उदयाचलके प्रदेशसे भूलोकमें प्रविष्ट होती है और सूर्यास्तके समय अस्ताचलके प्रदेशसे आकाशकी ओर प्रस्थान कर जाती हैं। अतः यमुनाकी जलराशि अक्षय ही रहती है और रहटकी तरह लौट-लौटकर पुनःपुनः आती-जाती रहती है।'

कलिन्दगिरिकी प्रार्थनाका भी वर्णन मिलता है। तदनुसार यमुनाका भूतलपर सर्वप्रथम अवतरण कलिन्दगिरिपर होता है। अतएव 'कालिन्दी' नाम विख्यात हुआ है।

इन शास्त्रीय माहात्म्योंको इंगित कर श्रीमहाप्रभु एवं श्रीप्रभुचरण श्रीयमुनाके आधिदैविक स्वरूपका वर्णन कर रहे हैं। यमुनाजलकी ही तरह वर्षाजल भी सूर्यरश्मि द्वारा भूतलपरसे ऊपर खींचा जाता है और बरसाया जाता है। परन्तु दोनोंमें अन्तर यह है कि वर्षाजल भौतिक प्रक्रियाद्वारा भूतलपर बरसता है और भौतिक प्रक्रियाद्वारा ही ऊपर आकृष्ट होता है किन्तु यमुनाके भूतलपर अवरोहण या भूतलपरसे सूर्यलोकमें आरोहण की प्रक्रिया भौतिक नहीं है। कलिन्दगिरिपर यमुनाका अवतरण सूर्यकी परिभ्रमणात्मिका गतिसे भिन्न प्रकारकी गतिके द्योतनके लिए ही है। अतः रश्मियोंसे यमुना सूर्यकी परिभ्रमणात्मिका गतिका ही अनुसरण करती हैं ऐसा नहीं समझना चाहिए। इससे सिद्ध होता है कि केवल आधिभौतिक रविमण्डलसे ही नहीं अपितु उसके अन्तःस्थित नारायणसे यमुनाका प्राकट्य है।

स्वरूप एवं प्राकट्य दोनोंमें श्रीकृष्ण तथा श्रीयमुना की समानता भी उल्लेखनीय है।

---

[1] आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं तपति। तत्र ता ऋचस्तदृचां मण्डलं स ऋचां लोकोऽथ य एष एतस्मिन्मण्डलेऽर्चिषि पुरुषस्तानि यजूंषि स यजुषां मण्डलं स यजुषां लोकोऽथ य एष एतस्मिन्मण्डले अर्चिर्दीप्यते तानि सामानि स साम्नां मण्डलं स साम्नां लोकः सैषा त्रय्येव विद्या तपति य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः। (महानारायणोप० १२.२)।

हिन्दी भावार्थ

जैसे श्रीकृष्णका प्राकट्य वसुदेव-देवकीके विरहतप्त हृदयोंसे हुआ था,[1] वैसे ही श्रीयमुनाका प्राकट्य भी तापात्मक रविमण्डलमें स्थित नारायणके हृदयसे हुआ। जैसे भगवान् वसुदेव-देवकीको प्रदत्त वरदानका स्मरण कराकर सर्वात्मभाववाले भक्तोंके धाम गोकुल—व्रजमें पधार गये, इसी तरह श्रीयमुना भी कलिन्दगिरिको प्रदत्त वरदानको वहाँ अवतरणके द्वारा सत्य बनाकर व्रजमें श्रीकृष्णकी क्रीडास्थलीमें पधार जाती हैं।

वैसे तो यमुनाजल श्यामवर्णका होता है, परन्तु अतिदूर रविमण्डलसे कलिन्दगिरिपर गिरनेके कारण जलमें फेन पैदा हो जाता है और प्रवाहमें भी तीव्र वेग आ जाता है, अतः फेनिल यमुनाजल श्यामल होनेपर भी उज्ज्वल-सा दिखलायी देने लगता है। जल जब ऊँचाईसे गिरता है तो प्रवाह वेगवत्तर हो जाता है और गिरनेकी जगहपर गर्त बन जाता है। फिर प्रवाहवेगवश टूटकर गिरनेवाले शिलाखण्ड भी मार्गमें जमा हो जाते हैं। इन शिलाखण्डोंके ऊपरसे होकर जब यमुनाजल बहता है तो उसकी एक अलग ही शोभा उभरती है। इस प्रकार शिला खण्डोंपरसे गुजरती यमुनाकी गति विलासपूर्ण हो जाती है।

परमात्माके जिस अन्तर्यामीरूपसे यमुना प्रकट हुई हैं, वह रूप व्यापकरूप माना गया है, फिर भी किसी-न-किसी तरहके प्रदेशभेदकी धारणाके आधारपर मूलधामसे कलिन्दगिरिपर अवतरण उपपन्न हो जाता है। जैसे व्यापिवैकुण्ठको सर्वव्यापी माननेपर भी व्यापिवैकुण्ठसे भगवान्‌का अवतार भूतलपर प्रकट होनेके अर्थमें स्वीकार किया ही गया है। इसी तरह समष्टि-अन्तर्यामी नारायणके व्यापक होनेपर भी, उनके हृदयसे कलिन्दगिरिपर यमुनाका अवतरण, प्रकट होनेके अर्थमें स्वीकार करना चाहिए।

कलिन्दगिरिके आस-पासके पर्वतीय प्रदेशमें ऊँची-नीची शिलाओंपर चढ़ती-उतरती हुई यमुना तीव्र फिर भी विलासपूर्ण गतिसे आगे बढ़ती हैं। इस तीव्र गति तथा विलासपूर्ण गतिके कारण पर्वतपरसे टूटे हुए शिलाखण्डोंको कभी-कभी यमुना जल-प्रवाहके साथ ऊपर उछालती हुई जाती हैं। तब ऐसा लगता है कि यमुना स्वयं भी कुछ उन्नत होकर चल रही हों।

जलप्रवाहके साथ लुढ़कती हुई शिलायें टूटती रहनेके कारण छोटी होती जाती हैं। इन छोटी शिलाओंके जमावके कारण कहीं भूमि ऊँची और कहीं नीची हो जाती है।

हिन्दी भावार्थ

ऐसी विषम भूमिपरसे जब यमुना गुजरती हैं तब जलप्रवाहमें एक घोष उत्पन्न होने लग जाता है। अपने प्रियतमसे मिलने जाती अभिसारिका जैसे प्रेमावेशमें कोई मधुर गीत गाती हुई जाये; अथवा अपने प्रेमभावोंको वाणीसे व्यक्त करती हुई भाग रही हो, ऐसे ही श्रीयमुना भी अपने प्रियतम श्रीकृष्णसे मिलनकी उत्सुकता एवं त्वरा के विविध स्नेहरसपूर्ण भावविकारोंको मुखरित करती हुई बहने लगती हैं।

कलिन्दगिरिपर अमन्द पूर अर्थात् सवेग प्रवाह के साथ अवतरणके कारण विषम-भूमिपर भी प्रवाह मन्द नहीं हो पाता है। अतः विषम-भूमितक पहुँचनेपर भी यमुना सघोष बहती हैं।

कोशमें 'दन्तुर' शब्दका एक अर्थ उन्नत दिया गया है परन्तु 'सघोषगतिदन्तुरा' में यह अर्थ लेना 'प्रकटगण्डशैलोन्नता' के भावको दुहराना होगा। इस पुनरावृत्तिसे अर्थबोधमें कोई रसात्मक चमत्कृति तो पैदा होती नहीं है। अतः 'सघोषगतिदन्तुरा' में 'दन्तुर' शब्दका अर्थ 'विविध रसभावोंका उभरना' लेना चाहिए।

जयदेवके, 'विपुलपुलकभरदन्तुरितम्' वचनका अर्थ 'अङ्गोंमें सर्वत्र रोमाञ्च हो जाना' लेनेपर 'दन्तुरित' शब्द रसशास्त्रीय सात्त्विक विकार रोमाञ्चके प्रकट होनेके अर्थमें ही प्रयुक्त हुआ मानना पड़ता है फिर भी यह सम्भव है कि पुलकित होनेपर रोमकूप-प्रदेश कुछ फूले हुए से दिखलायी देते हों, अतः 'दन्तुरित' का अर्थ पुनः उन्नत जैसा ही प्रतीत होने लगेगा। परन्तु 'केतकिदन्तुरिताशे' का अर्थ, "केतकीके पुष्पोंसे दिशायें दन्तुरित हैं" लेनेपर 'दन्तुरित' शब्दके कोशोक्त विविध अर्थ, 'उठना, उन्नत होना, विषम होना या फूलना' आदि सुसङ्गत नहीं होते।

अर्थात् विषम-भूमिपर सवेग बहनेके कारण होती ध्वनि ऐसी लगती है कि श्रीयमुना या तो प्रेमावेशपूर्ण गीत गाती हुई जा रही हों अथवा अपने नूपुरकी झङ्कार प्रकट करती हुई जा रही हों।

इस प्रसङ्गमें 'सघोषगतिदन्तुरा' का एक दूसरा गौण अर्थ यह भी सम्भव है कि अहीरोंके गाँवों—आभीरपल्लीको भी 'घोष' कहा जाता है, तदनुसार एक घोषमें रहनेवाले गोप-गोपिकाओंको 'सघोष' कहा जा सकता है, इन सघोष व्रजवासियोंके यमुना-तटपर स्नान-क्रीडा-जलाहरण आदि प्रयोजनोंसे वहाँ आनेपर यमुनाके तटपर भी विविध रसात्मक भाव प्रकट हो जाते हैं। परन्तु नित्यलीलामें व्रजके साथ यमुनाका नित्य सम्बन्ध होनेपर भी भूलोकमें तो समतल भूमि अर्थात् मैदानी इलाकेमें ही यमुनापर घोष—व्रजके गाँव बसे हैं, विषमभूमि पहाड़ी इलाकेमें नहीं, अतः इस अर्थको गौण ही मानना चाहिए।

---

[1] भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयङ्करः ।
आविवेशांशभागेन मन आनकदुन्दुभेः ॥ (भाग० १०।२।१६) ।
ततो जगन्मङ्गलमच्युतांशं समाहितं शूरसुतेन देवी ।
दधार सर्वात्मकमात्मभूतं काष्ठा यथानन्दकरं मनस्तः ॥ (भाग० १०।२।१८) ।

हिन्दी भावार्थ

बड़ी शिलाओंपरसे बहती हुई यमुना जब छोटी शिलाओंपर होकर बहने लगती हैं तो ऐसा लगता है कि वे किसी लचकीली नाजुक पालकीपर सवार होकर जा रही हों, जैसे पालकीमें बिठाकर नववधूको ससुराल ले जाया जाता है। स्थूल शिलाओंपर बहते समय ऊपर उठना और नीची शिलाओंपरसे बहते हुए पुनः नीचेकी ओर लचकना पालकीमें विराजनेका आभास प्रकट करता है। और वैसे यह वास्तविक भी है कि श्रीयमुनाका आधिदैविक स्वरूप आधिभौतिक यमुनाजलप्रवाहको पालकीकी तरह प्रयोगमें लाकर अपने प्रियतम श्रीकृष्णकी क्रीडास्थली तक पहुँचता है। जलप्रवाहकी पालकीपर श्रीयमुनाका समधिरूढ होना उसमें आविष्ट होनेके अर्थमें लेना चाहिए। यमुनाजलप्रवाहकी पालकीको 'दोलोत्तमा' इस अर्थमें कहा जा रहा है कि इस जलप्रवाहका व्रजमें भगवान्की जलक्रीडामें उपयोग अथवा सम्बन्ध है। अतः यह उत्तम पालकी है।

'सघोष-गति-दन्तुरा समधिरूढ-दोलोत्तमा' में पदच्छेद करनेपर 'असमधिरूढ' पाठ भी सम्भव है। नूपुरकी झङ्कार तो पालकीमें सवार होनेपर उतनी सम्भव नहीं। छोटी-बड़ी शिलाओंपरसे सवेग गुजरनेपर चरणोंमें पहने नूपुरकी तरह प्रकट हो रहे घोषके कारण भी ऐसा लगता है कि मानो आधिभौतिक जलप्रवाहरूप पालकीमें आधिदैविक स्वरूपसे श्रीयमुना विराजमान या आविष्ट होनेपर भी, एक पादचारिणीकी तरह श्रीकृष्णसे मिलनेको दौड़ रही हों। पालकीमें समधिरूढ—विराजी हुई या आधिभौतिक जलप्रवाहमें आविष्ट होनेपर भी, वह जलप्रवाह व्रज पहुँचे उससे पूर्व ही स्वयं आधिदैविक रूपमें पहुँच जानेकी तीव्र उत्कण्ठा या त्वरा के वश, मानो पालकीसे उतरकर, नूपुर धारण किये हुए, चरणोंमें नूपुरघोषके साथ पैदल भागने लग गयी हों, ऐसा लगता है।

भगवान् मुकुन्द मोक्षदाता हैं। परन्तु भक्त भक्ति ही करना चाहते हैं मुक्ति नहीं। भक्त इस भूतलपर भगवल्लीलानुभूति ही चाहते हैं, भगवान्में लीन होना नहीं। भूमिपर आनेके बाद श्रीयमुना, भगवान् मुकुन्दके मनमें ऐसी भक्तरति बढ़ाती हैं कि वे भक्तको अपने स्वरूपमें लीन करने या अपने लोकमें अवस्थित करनेके बजाय स्वयं भक्तोंके बीच भूतलपर अवतीर्ण होकर लीलाविहारमें तल्लीन हो जाते हैं।

रविके उदित होनेपर कमल खिलते हैं। अतएव उसे 'पद्मबन्धु' कहा जाता है। कमल सरसिज होनेके कारण एक तरह सुमन माना जाता है। [illegible] कमलके सखा सूर्यकी सुता होनेके कारण श्रीयमुना भी रसात्मिका हैं। भक्तके हृदयकमलको भगवत्स्नेहरसके सञ्चार तथा भगवान्के हृदयकमलको भक्तस्नेहरसके सञ्चार द्वारा श्रीयमुना भी अपने पिताकी तरह प्रफुल्लित करती रहती हैं।

इस श्लोकमें श्रीयमुनाके द्वितीय ऐश्वर्यका अर्थात् भावको उद्गमित कर पानेकी सामर्थ्यका वर्णन अभिप्रेत है ॥२॥

भुवं भुवन - पावनीमधिगतामनेक - स्वनैः ;
प्रियाभिरिव सेवितां शुक-मयूर-हंसादिभिः ।
तरङ्ग-भुज-कङ्कण-प्रकट-मुक्तिका - वालुका-
नितम्ब-तट-सुन्दरीं नमत कृष्ण-तुर्य-प्रियाम् ॥ ३ ॥

हिन्दी श्लोकान्वयार्थ

भुवम् अधिगताम्	भूमिपर आकर
भुवनपावनीम्	इस भुवनको पावन करनेवाली
अनेकस्वनैः	अनेकविध कलरव करनेवाले, प्रिय
शुकमयूरहंसादिभिः	सखियोंके समान, शुक, मयूर, हंस आदि
प्रियाभिरिव सेविताम्	पक्षिगणोंसे घिरी हुई
तरङ्ग-भुज-कङ्कण-प्रकट-	अपनी तरङ्गोंकी भुजाओंमें पहने कङ्कणमें
मुक्तिका-वालुका-नितम्ब-	जड़े छोटे-छोटे मोतियोंकी-सी वालुका-
तट-सुन्दरीम्	कणिकावाले उभरे हुए नितम्ब जैसे
	सुन्दर तटवाली
कृष्ण-तुर्य-प्रियाम्	श्रीकृष्णकी चतुर्थ प्रियाको
नमत	नमन करो ॥ ३ ॥

ततो[1] भुवि[2] आगतायाः धर्मान् आह—, **भुवम्** इति। प्रयोजनम्—**भुवनपावनीम्** इति। **अनेकस्वनैः** इति शुकादिविशेषणम्। एतेन विभावादिसामग्री उक्ता। यत्र यथा उचितं तत्र तथा कुर्वन्ति इति प्रियात्वम्।

हिन्दी विवृत्यर्थ

भूतलपर आयी हुई श्रीयमुनाके सौन्दर्यका वर्णन इस श्लोकमें अभिप्रेत है।

इस भुवनको पावन करनेके प्रयोजनसे श्रीयमुना भूतलपर आयी हैं। समतल भूमिपर बहती यमुनाके तटपर अनेक पक्षिगण उड़कर आते हैं और वहाँ मधुर कलरव करते रहते हैं। शुक, मयूर, हंस आदि पक्षी प्रिय सखियोंकी तरह श्रीयमुनाको घेरे रहते हैं। मानों सज-धजकर अपने प्रियतमसे मिलने जाती प्रियतमा अपनी अन्तरङ्ग सखियोंके बीच घिरी हुई जा रही हो!

---

१. क—पाठे 'ततः' इति नास्ति।
२. 'ततो भूमि-' इति पाठः श्रीपुरुषोत्तमचरणानां हस्ताक्षरग्रन्थे वर्तते इति [illegible] ग—पुस्तके।

तीरस्य [illegible]सिकताकृतशोभां तत्स्वरूपम् अपि आहुः, तरङ्ग-इति। यदा तरङ्गाः तीरम् आगत्य प्रसृता भवन्ति तदा तीर-सिकताः मुक्तावद् भासन्ते। ताः न सिकताः, लोकप्रतीतिः परं तथा; किन्तु तरङ्गा एव भुजाः,[1] तत्र यानि कङ्कणानि, तत्र प्रकटा या मुक्तिका मुक्ताफलानि, तानि एव वालुकात्वप्रतीयमानानि, तद्युक्तो यो नितम्ब एव उन्नतदेशात्मकतटः, तेन तादृशीम्। भगवति स्नेहातिशयो विशेषणेन उक्तः ॥३॥

हिन्दी विवृत्यर्थ

इस तरहके रसात्मक वर्णनमें श्रीयमुनाको भगवान्के स्नेहका आलम्बन-विभाव समझना चाहिए। अपनी अन्तरङ्ग सखियोंद्वारा गाये जाते मधुर गीतोंके से शुक-मयूर-हंस आदिके कलरव उद्दीपन विभाव हैं। श्रीयमुनाके ऐसे सौन्दर्यको निरखकर श्रीकृष्णके हृदयमें प्रकट होता स्नेह स्थायी भाव है।

किसीको कब क्या उचित लगता है यह तो उसका कोई अन्तरङ्ग मित्र ही जान पाता है। जब श्रीयमुना अपने प्रियतम श्रीकृष्णसे मिलने भू-तलपर आयी हैं तो उस मिलनकी वेलामें रस-भावको उद्दीप्त करनेके लिए इन पक्षिगणोंका यमुना-तटपर मधुर कलरव करना प्रिय सखीजनोचित एवं श्रीयमुनाको सर्वथा अभीष्ट व्यवहार है।

यमुनातटपर चमकती हुई वालुकाकी भी एक अपनी शोभा है! जब यमुना-जलकी तरङ्गें तटपर आकर फैल जाती हैं तब तटपर बालुकी कणिकायें झीने-झीने मोतियोंकी तरह चमकने लग जाती हैं। इन्हें कोई केवल सिकता—बालुकी कणिकायें न मान बैठे! क्योंकि लोक-प्रतीतिमें ये बालुकी कणिकायें लगती हैं परन्तु श्रीयमुनाके आधिदैविक स्वरूपमें तरङ्गें भुजास्थानीय हैं, अतः इन भुजाओंमें धारण किये हुए कङ्कणमें जड़ी मुक्तिकायें ही आधिभौतिक रूपमें वालुकाकी तरह दर्शित हो रही हैं।

आधिभौतिक स्वरूपमें जलतरङ्गोंद्वारा ऊँचे-ऊँचे तटोंपर वालुकाकी कणिकाओंको बिखराना आधिदैविक स्वरूपमें मोती-जड़े कङ्कणोंवाले अपने भुजको नितम्बोंपर स्थापित करनेकी क्रिया है। "अपनी तरङ्गोंकी भुजाओंमें पहने कङ्कणमें जड़े हुए झीने-झीने मोतियोंकी-सी वालुकाकी कणिकावाले उभरे हुए नितम्ब जैसे सुन्दर तटवाली" यह विशेषण अभिधावृत्तिसे श्रीयमुनाके सौन्दर्यका वर्णन है। किन्तु ध्वनितार्थ यहाँ श्रीकृष्णका श्रीयमुनाके प्रति निरतिशय स्नेह ही है। श्रीयमुनाके उस सौन्दर्यका वर्णन यहाँ श्रीमहाप्रभु कर रहे हैं जो श्रीकृष्णके स्नेहासक्त नयनोंसे निहारनेपर श्रीयमुनामें प्रकट होता है ॥ ३ ॥

---

[1] तरङ्गादीनां भुजादित्वं हरिवंशे सुपपादितम् इति [illegible] यमुनाष्टक-टिप्पण्याम्।

हिन्दी भावार्थ

आधिदैविक रूपमें श्रीयमुनाका भू-तलपर आगमन भगवान्के मनमें भक्तोंके प्रति रति-भावको जगानेके हेतु हुआ है। श्रीयमुनाका भू-तलपर आगमन केवल स्वयंके प्रति भगवान्की आसक्तिको बढ़ानेके सीमित प्रयोजनवश नहीं है। यमुना-कूलपर जो भी भक्त, भगवान्को खोजना या मिलना चाहते हैं, ऐसे सभी भक्तोंके प्रति भगवान्का मन निरतिशय आसक्त हो जाता है।

रतिभावके उद्बोधन हेतु आलम्बन-विभाव, उद्दीपन-विभाव, अनुभाव एवं सञ्चारि-भावोंको रस-शास्त्रमें आवश्यक सामग्रीरूप माना गया है। भू-तलपर श्रीयमुनाके आगमनके प्रयोजनके अनुरूप इस श्लोकमें श्रीयमुनाके रसशास्त्रीय गुण-धर्मोंका अर्थात् आलम्बन-विभाव आदिका वर्णन अभिप्रेत है।

श्रीयमुनाका स्वरूप-सौन्दर्य ही ऐसा है कि श्रीकृष्णके मनको लुभा लेता है। इस अर्थमें श्रीयमुना आलम्बन-विभाव हैं।

अपने प्रियतमको वरमाला पहनाने जाती वधूको घेरकर चलनेवाली अन्तरङ्ग सखियाँ मधुर-मधुर गीत गाती जाती हैं। ये गीत प्रसङ्गोचित रस-भावके उद्दीपक होते हैं। इसी तरह यमुना-कूलपर बैठे शुक, मयूर और हंस आदि पक्षिगण यमुनाको घेरकर मधुर कलरव करते रहते हैं, और श्रीयमुनाके प्रति तथा यमुना-तटपर विचरण करते भक्तोंके प्रति श्रीकृष्णके हृदयमें रति-भावको उद्दीप्त करते हैं। अतः यह कलरव उद्दीपन-विभाव है।

आधिभौतिक-आध्यात्मिक रूपमें रविमण्डलसे भूमिपर आनेका प्रयोजन पद्मपुराणके यमुना-माहात्म्यमें, "सातों द्वीपों और सातों समुद्रों को भेदकर पूर्वाभिमुखी होकर बहनेवाली, अपने मार्गमें आनेवालोंको पावन करनेवाली, अस्ताचलसे उदयाचलकी दिशामें क्रीडा-विहार करती-सी यमुना अपनेपर आश्रित जीवोंके पापोंको नष्ट कर देती हैं" कहकर दिखलाया गया है। तदनुसार श्रीमहाप्रभु भी 'भुवनपावनी' विशेषण द्वारा यमुनाके आधिभौतिक-आध्यात्मिक रूपमें भूमिपर आगमनका प्रयोजन दिखला रहे हैं।

श्रीयमुनाका आधिदैविक स्वरूप कृष्णावतारके समय ही प्रकट होता है; अथवा कभी-कभी किसी एकान्त भक्तको दर्शन देनेके लिए भी! भगवान् जब अपने अनुग्रहीत भक्तोंके बीच क्रीडा करनेके लिए प्रकट होते हैं, तब श्रीयमुना भी क्रीडास्थली व्रजमें आधिदैविक स्वरूपमें प्रकट होकर, भगवान्के मनको, स्वयंके प्रति तथा अपने कूलपर विहरते निज यूथके भक्तोंके प्रति भी, आकर्षित कर लेती हैं। भगवान्में रति-वर्धन श्रीयमुनाके प्राकट्यका परम प्रयोजन है।

हिन्दी भावार्थ

अनवतार-कालमें अपने आध्यात्मिक-आधिभौतिक रूपोंमें यमुनाका रविमण्डलसे भू-तलपर आनेका प्रयोजन—दैवी जीवोंके तनरूप भुवनको पापरहित बनाकर पावन करना तथा ऐसे पवित्र भक्तोंके मनको भगवद्भावके दान द्वारा समृद्ध बनाना होता है।

दैवी जीव चाहे लीलासृष्टिस्थ हों या उनसे भिन्न हों, इस भुवनमें दैवी जीवोंके मनको अनन्य भगवद्भावसे सम्पन्न करना तथा उनके तनको भगवत्सेवाके योग्य बनाना, इन दो अर्थोंमें यमुना भुवनपावनी हैं। दैवी जीवोंके तन-मनकी यह पवित्रता अथवा शुद्धि पुष्टिमार्गीय शुद्धि है। अन्यथा भगवान्के प्रति अनन्य भाव न होनेपर मन कितना भी निर्विकार क्यों न हो पर पुष्टिमार्गीय दृष्टिकोणसे वह अशुद्ध ही माना जाता है। स्नान, व्रत, संयम, प्रायश्चित्तादि कर्मोंसे यह तन कितना भी शुद्ध क्यों न हो परन्तु भगवत्सेवापरायण न होनेपर पुष्टिमार्गीय दृष्टिसे वह अशुद्ध ही माना जाता है। पुष्टिमार्गीय शुद्धि मनका भगवान्के प्रति अनन्य भावमें तन्मय हो जाना है; तथा तनका अहङ्काररहित स्नेहके साथ भगवत्सेवामें तत्पर हो जाना है।

'प्रिया'का एक अर्थ 'प्रेमिका' भी होता है। किन्तु श्रीमहाप्रभु यहाँ शुक-मयूर-हंसादि पक्षियोंके 'प्रिय—अन्तरङ्ग सखी' होनेके अर्थमें ही 'प्रियाभिरिव' कह रहे हैं। शुक यमुना-कूलपर लीलामें तल्लीन भगवान् और भक्त के संवादमें प्रयुक्त शब्दोंकी अनुकृति द्वारा अर्थात् वाचिकी सेवा द्वारा रसभावोंको उद्दीप्त करता है। मयूर अपने सुन्दर रंग-बिरंगे पिच्छोंको नृत्य करते समय फैलाकर कायिकी सेवा द्वारा यमुना-कूलपर रसोद्दीपक दृश्यका सृजन करता है। हंस मानसी सेवा करता है। शुक, मयूर तथा हंस के अलावा अन्य भी कपोत, कोकिल, सारस एवं चक्रवाक आदि पक्षी यमुना-तटपर अपने-अपने मधुर कलरव द्वारा रसोद्दीपनका काम करते हैं।

भू-तलपर आयी हुई श्रीयमुनाके लिए दो विशेषण प्रयुक्त हुए हैं: (१) 'भुवन-पावनी' और (२) 'अनेकस्वनैः शुकमयूरहंसादिभिः प्रियाभिरिव सेविता।' इन विशेषणोंके द्वारा श्रीयमुनाके प्रति भगवान्की प्रीति तो सूचित होती है पर स्नेहातिशय नहीं। वह तो तृतीय विशेषण 'तरङ्ग-भुज-कङ्कण-प्रकट-मुक्तिका-वालुका-नितम्बतटसुन्दरी' द्वारा ही ध्वनित हो रहा है, क्योंकि पूर्वोक्त दो विशेषणोंद्वारा अनुभाव और उद्दीपन-विभाव का वर्णन अभिप्रेत है जब कि तृतीय विशेषण द्वारा आलम्बन-विभावका वर्णन अभिप्रेत है।

इस तृतीय विशेषणद्वारा श्रीयमुनाके आधिदैविक स्वरूप-सौन्दर्यका निरूपण हो रहा है। यह आधिदैविक स्वरूप श्रीकृष्णकी अवतारकालीन लीलामें प्रकट होता है।

अतएव भगवान्की अवतारकालीन लीलाके पूर्व कहीं-कहीं सर्वविध दिव्य गुणोंसे सम्पन्न यमुनाके दोषोंका भी जो वर्णन शास्त्रोंमें दिखलाई देता है, उसकी सङ्गति बैठ

हिन्दी भावार्थ

जाती है। उदाहरणतया 'मघोनि वर्षत्यसकृद् यमानुजा' (भाग० १०।३।५०) की सुबोधिनीमें यमुना-प्रवाहके बारेमें श्रीमहाप्रभुका यह कथन कि 'स्वभावतोऽपि यमुना क्रूरा इत्याह यमानुजा इति' (सुबो० १०।३।५०) इत्यादिमें यमुनाके आधिदैविक स्वरूप चतुर्थ प्रियाका वर्णन नहीं किन्तु आधिभौतिक जल-प्रवाहका वर्णन है। सिद्धान्त-मुक्तावलीमें गङ्गाके और उसके उदाहरण द्वारा ब्रह्मके भी तीन—आधिभौतिक, आध्यात्मिक तथा आधिदैविक—रूप समझाये गये हैं। तदनुसार श्रीयमुनाके भी अनेक रूप हैं। आधिदैविक रूपमें भी मूल स्वरूप और अंशरूपा के प्रभेद हमारे शास्त्र-वचनोंके स्वारस्यके अनुसार स्वीकार करने पड़ते हैं। द्वारका-लीलामें भी श्रीयमुनाका एक स्वरूप 'कालिन्दी' के रूपमें वर्णित हुआ है। स्वयं कालिन्दीके वचन भी उपलब्ध होते हैं कि वे यमुना-जलमें रहती थी, 'कालिन्दीति समाख्याता वसामि यमुनाजले' (भाग० १०।५८।२२)। इसी तरह वेदमें भी यम-यमी-संवादमें एक 'यमानुजा' का वर्णन मिलता है। इन्हें मूल स्वरूप न समझकर यमुनाके आधिदैविक रूपमें अंशावतार ही समझना चाहिए।

श्रीयमुना व्रज-लीलामें चतुर्थ प्रिया हैं और कालिन्दी द्वारका-लीलामें भगवान्की चतुर्थ भार्या हैं। व्रज-लीलामें श्रीयमुनाकी इस चतुर्थ संख्याका द्वारका-लीलामें कालिन्दीके चतुर्थ भार्या होनेसे कोई सम्बन्ध नहीं है। यहाँ यह अपेक्षित है—

व्रजमें चार प्रकारकी स्वामिनियाँ हैं: १. मुख्य स्वामिनी श्रीवृषभानुजा, २. सर्वात्म-भाववती सीता—विवाहिता श्रुतिरूपा गोप-भार्या, जिन्हें 'अन्यपूर्वा' भी कहा जाता है, ३. कुमारिकाएँ जिनके चीर भगवान्ने कात्यायनी-व्रतके प्रसङ्गमें हर लिये थे, इन ऋषिरूपा अविवाहिता कन्याओंको 'अनन्यपूर्वा' भी कहा जाता है और ४. श्रीयमुना।

शब्दान्तरसे एक अन्य प्रकारसे भी श्रीयमुनाके 'चतुर्थ प्रिया' होनेकी बात समझी जा सकती है, १. श्रीराधिकाके यूथकी गोपिकायें तामसी हैं, २. श्रीचन्द्रावलीके यूथकी गोपिकायें राजसी हैं, ३. कुमारिकाओंका यूथ सात्त्विकी गोपिकाओंका है तथा ४. श्रीयमुनाके यूथकी गोपिकाएँ गुणातीत या निर्गुण यूथकी मानी जाती हैं। इस तरह चार यूथोंकी मुख्य स्वामिनियोंमेंसे एक होनेके कारण श्रीयमुनाको 'चतुर्थ प्रिया' कहा जाता है।

पूर्वोक्त यमुना-माहात्म्यके यमुनाभिषेकवाले अध्यायमें भगवान्के द्वारा श्रीयमुनाको प्रदत्त आश्लेष-सुख तथा स्वसान्निध्यका वरदान भी श्रीयमुनाके कृष्णप्रिया होनेकी शास्त्रीय पुष्टि है।

इस तरह इस श्लोकमें श्रीयमुनाके पूर्वोक्त तृतीय ऐश्वर्यका वर्णन हुआ: जीव और भगवान्के बीच सम्बन्ध जुड़ पानेमें जो प्रतिबन्ध या विघ्न उपस्थित हो सकते हैं उन्हें

हिन्दी भावार्थ

श्रीयमुना दूर करती हैं। इससे पुष्टि-जीव परमात्माके पुष्टि-स्वरूपको प्राप्त करने योग्य बन जाता है ॥ ३ ॥

◆

अनन्त-गुण-भूषिते शिव-विरञ्चि-देव-स्तुते ;
घनाघननिभे सदा ध्रुवपराशराभीष्टदे ।
विशुद्ध-मथुरा-तटे सकल-गोप-गोपी-वृते ;
कृपाजलधिसंश्रिते मम मनःसुखं भावय ॥ ४ ॥

हिन्दी श्लोकान्वयार्थ

अनन्तगुणभूषिते	अनन्त गुणोंसे भूषित
शिव-विरञ्चिदेवस्तुते	शिव, ब्रह्मा आदि देवता भी जिनकी स्तुति करते हों, ऐसी
घनाघननिभे	घुमड़ते हुए बादलोंके समान श्यामल
सदा ध्रुव-पराशराभीष्टदे ।	अपने तटपर तपस्या करनेवाले ध्रुव-पराशर जैसे तपस्वियोंको सदा अभीष्ट फल देने वाली ।
विशुद्धमथुरातटे	जिसके तटपर विशुद्ध मथुरा नगरी स्थित है, ऐसी
सकलगोपगोपीवृते	सभी तरहके गोपों तथा गोपिकाओं से घिरी हुई
कृपाजलधि-संश्रिते	कृपाके सागर श्रीकृष्णसे मिलनेवाली
मम मनःसुखं भावय ॥ ४ ॥	मुझे मनःसुख हो ऐसा करो ॥ ४ ॥

भगवत्समानधर्मत्वं ज्ञापयितुं तथा विशेषणैः आह, अनन्त-इति । इमानि सप्तम्यन्तानि विशेषणानि, तत्स्त्रियायां सम्बुद्धिरूपाणि ।

हिन्दी विवृत्यर्थ

भगवान्का वर्णन प्रायः सप्तधा होता है। भगवान्में छः गुण या धर्म प्रमुख माने जाते हैं—ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य। सातवें स्वयं भगवान्को 'धर्मी' कहा जाता है। यों छः धर्म और सातवें स्वयं धर्मीरूप भगवान्का वर्णन सात प्रकारसे होता है। भगवान्के वर्णनकी इस रीतिके अनुसार इस श्लोकमें श्रीयमुनाका वर्णन भी सप्तधा हो रहा है—

घनाघनशब्दो निबिडतरो घनसमुदायं वदति । श्यामे । तादृशीति वा । ध्रुवादेः तत्तीर एव प्रभुप्राकट्यात् तथा ।

विशुद्धा मथुरा तटे यस्याः । सा निकटे वा यस्य ।

हिन्दी विवृत्यर्थ

(१) अनन्तगुणभूषिते
(२) शिवविरञ्चिदेवस्तुते
(३) घनाघननिभे
(४) ध्रुवपराशराभीष्टदे
(५) विशुद्धमथुरातटे
(६) सकलगोपगोपीवृते
(७) कृपाजलधिसंश्रिते

इनमें छः पद विशेषणवाचक हैं, जिनके द्वारा गुण-धर्मोका निरूपण अभिप्रेत है। एक पद विशेष्यवाचक है जिसके द्वारा धर्मीके स्वरूपका निरूपण अभिप्रेत है। इस प्रकारसे वर्णन करनेका अभिप्राय यह है कि श्रीकृष्ण तथा श्रीयमुना की समानता हम समझ पावें।

संस्कृत-व्याकरणकी दृष्टिसे इन सातों पदोंको पुंल्लिङ्गकी सप्तमी विभक्तिके एकवचनके रूपमें प्रयुक्त भी माना जा सकता है; और स्त्रीलिङ्गकी सम्बोधनार्थक प्रथमा विभक्तिके एकवचनके रूपमें प्रयुक्त भी। दोनों तरहसे प्रयोग सार्थक है। पुंल्लिङ्ग माननेपर इनसे श्रीकृष्णका निरूपण सम्भव है और स्त्रीलिङ्ग माननेपर श्रीयमुनाका।
श्रीकृष्णपरक माननेपर अर्थ होता है :

भगवान् अनन्त गुणोंसे विभूषित हैं। शिव, ब्रह्मा आदि देवगण भी भगवान्की स्तुति करते हैं। घुमड़ते हुए बादलोंके समूहकी तरह भगवान्का श्रीअङ्ग श्यामल है। भगवान् सर्वदा ही ध्रुव, पराशर जैसे तपस्वी भक्तोंके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं। भगवान्की नित्य-सन्निधिके कारण मथुरा नगरी भगवान्के निकट होनेसे विशुद्ध मानी जाती है। सभी गोप और गोपिकायें व्रजमें भगवान्को घेरे रहती हैं। भगवान् श्रीहरिमें कृपाका असीम सागर लहराता रहता है।

श्रीयमुनासे यही प्रार्थनीय है कि ऐसे पूर्व वर्णित भगवान्के बारेमें हमारे (श्रीमहाप्रभुके) हृदयमें रहे मनोरथोंको वे पूर्ण करें।
श्रीयमुनापरक माननेपर अर्थ होता है :

श्रीयमुना अनन्त गुणोंसे भूषित हैं। शिव, ब्रह्मा आदि देवगण भी श्रीयमुनाकी स्तुति करते हैं। भगवान्के दर्शन पानेके, ध्रुव-पराशर जैसे तपस्वियोंके मनोरथ यमुना-

निरवधिकृपायुक्तो हरिः तस्मिन् । अन्या नदी लौकिकं जलधिं सङ्गता भवति, इयं तु तादृशं श्रीव्रजेशं संश्रिता । एतेन त्वत्सङ्गतो भगवत्सङ्गतो भवति इति भावः सूचितः ॥ ४॥

हिन्दी विवृत्यर्थ

तटपर सफल हुए । यमुना-तटपर बसी हुई मथुरा नगरी विशुद्ध मानी जाती है । यमुना-तट सभी तरहके गोपों एवं गोपिकाओं से घिरा हुआ रहता है । अन्य नदियोंकी तरह यमुना किसी लौकिक सागरमें नहीं मिलती हैं किन्तु कृपाके असीम सागर श्रीव्रजेशसे ही मिलती हैं । अतः श्रीयमुनाको पानेवाला भगवान्‌को भी पा लेता है । ऐसी श्रीयमुनासे यही प्रार्थनीय है कि वे हमारे (श्रीमहाप्रभुके) मनको सुखप्रद होनेवाले श्रीकृष्णका दर्शन करावें ! ॥ ४ ॥

हिन्दी भावार्थ

भगवान्‌के वचनः 'मन्निष्ठं निर्गुणं स्मृतम्' (भाग० १२।२५।२४) के अनुसार परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णमें निष्ठ होनेपर वस्तु या व्यक्ति निर्गुण बन जाता है । शुद्धाद्वैत दर्शनमें 'निर्गुण' शब्दका अर्थ सर्वथा गुणरहित होना ही केवल नहीं है । अनेकविध अप्राकृत दिव्य गुणोंके रहनेपर भी यदि कोई प्राकृत गुण न हो तो 'निर्गुण' शब्दका प्रयोग किया जा सकता है ।

शुद्धाद्वैत दर्शनकी एक विवक्षता यह भी है कि ब्रह्मको प्राकृत गुणोंसे सर्वथा रहित भी नहीं माना जा सकता ; क्योंकि अन्ततः प्रकृति भी परमात्माके द्वारा जगत्कारण बननेके लिए धारण किये गये अनेक रूपों—काल, कर्म, स्वभाव, प्रकृति और पुरुष—मेंसे एक रूप है । अतः प्राकृत गुण यदि प्रकृतिमें रहते हों और वह प्रकृति—एक अन्यतम रूप होनेके कारण—परमात्मामें रहती हो तो प्राकृत गुणोंकी सत्ता भी परमात्मामें स्वीकार करनी ही पड़ेगी । अन्तर केवल यही होता है कि ब्रह्माण्डके कुछ पदार्थ परमात्माके प्रकृति रूपसे प्रकट हुए हैं और कुछ अन्यथा भी । स्पष्ट है कि जो पदार्थ प्रकृतिसे प्रकट हुए हैं उनमें परमात्माके अन्य अप्राकृत दिव्य गुण छिप जाते हैं—तिरोहित हो जाते हैं—केवल प्राकृत गुण ही प्रकट हो पाते हैं । अतएव प्रकृतिसे प्रादुर्भूत प्राकृत ब्रह्माण्डके प्रत्येक पदार्थको त्रिगुणात्मक अथवा किसी एक गुणकी प्रमुखताके कारण 'सात्त्विक', 'राजस' या 'तामस' कहा जाता है ।

परमात्मामें दिव्य, अप्राकृत गुण अनन्त हैं । प्राकृत पदार्थोंमें जैसे वे तिरोहित हो जाते हैं, वैसे तिरोहित रूपमें नहीं, किन्तु प्रकट रूपमें वे परमात्मामें स्थित हैं । अतः मूल रूपमें परमात्मा, स्वयंमें प्राकृत गुणोंके विद्यमान होनेपर भी, उनसे अभिभूत नहीं होता है । प्राकृत-गुणयुक्त होनेपर भी उनसे अभिभूत न होना गुणातीत होना

हिन्दी भावार्थ

माना जाता है । यह गुणातीत होना 'निर्गुण' शब्दका मुख्य अर्थ है । अतएव जिस प्राकृत वस्तु या व्यक्ति में परमात्माके दिव्य अप्राकृत गुण प्रकट होते हैं वह प्राकृत गुणों से अभिभूत नहीं हो पाती है । फलतः ऐसी वस्तु या व्यक्ति को 'निर्गुण' कहा जाता है । प्राकृत-गुण सान्त होते हैं पर अप्राकृत दिव्य गुण अनन्त होते हैं । प्राकृत गुणों से अभिभूत वस्तु या व्यक्ति को 'सगुण' कहा जाता है पर अनभिभूतको 'निर्गुण' ।

श्रीयमुनाको जब 'चतुर्थ-प्रिया' कहा गया तो वह सात्त्विक, राजस, तामस और निर्गुण यों चार प्रकारके स्वामिनियोंके यूथके सन्दर्भमें कहा गया था । श्रीयमुना निर्गुण हैं, अर्थात् गुणातीत हैं, क्योंकि अनेकविध दिव्य गुणोंसे युक्त हैं । ये अनन्तगुण-भूषिता हैं ।

व्रजमें भगवान्‌की अन्य प्रियतमाओंके भगवन्निष्ठ होनेपर भी उन्हें गुणातीत न मानकर 'सगुण' कहना कुछ विसंवादी-सा लगता है । किन्तु इसका समाधान यह है कि जो लीलाएँ भगवान् भूतलपर प्रकट करते हैं उनमें कभी प्राकृत गुणोंका भी आभास होता है । यह न हो तो भगवल्लीलाके भूतलपर प्रकट होनेमें वह रसात्मकता नहीं आ पायेगी । अतः भूतलपर प्रकट भगवत्स्वरूप अथवा भगवल्लीला में प्राकृत गुणोंके जैसे गुण, अपनी योगमाया शक्तिके द्वारा भगवान् प्रकट करते हैं । अतएव अपनी कुछ प्रियतमाओंमें भगवान् प्राकृत गुणोंके जैसे सात्त्विक, राजस या तामस स्वभाव भी प्रकट करते हैं । ये प्रियतमाएँ भगवन्निष्ठ होनेके कारण गुणातीत हो जानेपर भी, भूतलपर अपेक्षित लीलाके स्वरूपके अनुरूप, सात्त्विक आदि स्वभाववाली प्रतीत होती हैं । इस अर्थमें श्रीयमुनाके अलावा अन्य स्वामिनियोंके यूथको 'सगुण' कहा जाता है । किन्तु श्रीयमुनामें भूतलपर प्रकट होती लीलामें भी अप्राकृत गुण ही प्रकट रहते हैं । योगमाया द्वारा प्रदर्शित प्राकृत गुण जैसे अप्राकृत गुण नहीं । अतः श्रीयमुनाको 'निर्गुण' या 'गुणातीत' कहा जा रहा है ।

श्रीकृष्ण और श्रीयमुना, तत्त्वतः दोनों एक ही हैं—एक पुरुषोत्तम है तो अन्य प्रियोत्तमा ! अतएव दोनोंमें इस अन्तरके अलावा अन्य सभी तरहसे रूप, गुण एवं धर्म में समानता है ।

श्रीमहाप्रभुने, अतएव, श्रीयमुनाके सतथा वर्णनमें ऐसे पदोंका प्रयोग मूल-कारिकामें किया है कि जिन्हें स्त्रीलिङ्गमें प्रयुक्त माननेपर श्रीयमुनापरक घटाया जा सकता है; और पुंलिङ्गमें प्रयुक्त माननेपर श्रीकृष्णपरक भी घटाया जा सकता है । इससे श्रीमहाप्रभु यह सूचित करना चाहते हैं कि जैसे इन पदोंमें अर्थगत भेद न होनेपर भी व्याकरणकी दृष्टिसे केवल शब्दरूपगत भेद है, स्त्रीलिङ्ग और पुंलिङ्ग का, वैसे ही श्रीयमुना और

हिन्दी भावार्थ

श्रीकृष्ण के बीचमें भी केवल रूपगत प्रिया-प्रियतमका भेद है ; तत्त्वतः दोनों एक ही हैं। श्रीकृष्ण एवं श्रीयमुना की समानता, छः धर्म और एक धर्मी की द्योतक समसंख्यासे ही केवल हो रही है, ऐसा नहीं समझ लेना चाहिए। दोनोंमें संख्यागत समानतासे कहीं अधिक गहन समानता है—सम संख्या तो उसका केवल निदर्शनमात्र है।

इस कारिकामें श्रीकृष्ण एवं श्रीयमुना दोनोंके वर्णनपरक जो सात पद प्रयुक्त हुए हैं उनमें कौन-से छः पद विशेषणवाचक हैं तथा कौन-सा एक पद विशेष्यवाचक है? अर्थात् श्रीकृष्ण अथवा श्रीयमुना के मुख्य नामके रूपमें कौन-सा पद प्रयुक्त हुआ है, जिसके विशेषण रूप अन्य छः पद हैं?

इस श्लोकमें दो पद ऐसे हैं कि जिन्हें मुख्य नाम या विशेष्य की कोटिमें रखा जा सकता है : (१) घनाघननिभे (२) कृपाजलधिसंश्रिते।

(१) 'घनाघन' शब्दका अर्थ होता है मेघ। यह इस पदको अव्युत्पन्न निपातरूप माननेपर शक्य है। अन्यथा यौगिक अर्थ करनेपर तो कृदन्तप्रकरणमें आये 'हन्तेर्घत्वञ्च' नियमके अनुसार 'घनाघन' शब्दका अर्थ हननकर्ता भी हो सकता है। परन्तु यह यौगिक अर्थ यहाँ ग्राह्य नहीं है। भगवान् मेघश्याम वर्णके हैं। अतएव प्रमुख नाम—'कृष्ण'का अर्थ भी मेघश्याम ही होता है। भागवतके—'कृष्णायाः हरिततरले' श्लोकमें श्रीयमुनाको भी 'कृष्णा' कहा गया है। आकाश अपनी असीम गहराईके कारण नीला दिखलाई देता है। इसी तरह भगवान्की आनन्दरूपता की भी गहराईके असीम होनेके कारण भगवान् श्याम दिखलाई देते हैं। फिर भी आकाशकी नीलिमा और श्रीकृष्णकी नीलिमा में एक विशेष अन्तर है। भगवान्की नीलिमा आकाशकी नीलिमाकी तरह भ्रान्तिकल्पित नहीं है। श्रीकृष्णकी नीलिमा मुख्य स्वामिनी श्रीराधाकी दिव्य शृङ्गारमयी दृष्टिके आलम्बनविभाव होनेके कारण तथा भक्तोंके हृदयमें शृङ्गाररसके स्थायिभाव 'रति' रूप होनेके कारण है। शृङ्गार-रसका रंग रस-शास्त्रमें श्याम माना गया है। भगवान्का भक्तोंके द्वारा भावित रूप कल्पित या अवास्तविक नहीं माना जाता। 'घनाघननिभे' पदसे भगवान् श्रीकृष्णके एवं श्रीयमुनाके इस मुख्य रूपका बोधन हो रहा है। अतः इस पदको मुख्य नाम या विशेष्य का वाचक मानकर अन्य सभी छः 'अनन्तगुणभूषिते' आदि पदोंको विशेषणवाचक मानना चाहिए।

(२) इसी तरह 'कृपाजलधिसंश्रिते' पदको भी मुख्य नाम या विशेष्य का वाचक माना जा सकता है। कृपा भगवान्का नित्य आविर्भूत गुण है। अतः उसे स्वरूपकी कोटिमें रखा जा सकता है। भगवान्के सभी गुण नित्य ही होते हैं पर वे सभी नित्य

हिन्दी भावार्थ

आविर्भूत नहीं होते। कृपा भगवान्का ऐसा गुण है कि वह सभी लीलाओंमें नित्य आविर्भूत रहता है। जब कि अन्य गुण किसी एक लीलामें प्रकट होते हैं तो दूसरीमें तिरोहित हो जाते हैं। कृपाके बिना कोई भी लीला सम्भव ही नहीं है। अतः 'कृपाजलधिसंश्रिते' विशेषणवाचक न होकर भगवान्के स्वरूपका बोधक विशेष्यवाचक पद है। अपारकरुणाशील भगवान्में संश्रित अर्थात् अभिन्नतया स्थित होनेके कारण इसे श्रीयमुनाके भी मुख्य स्वरूपका बोधक विशेष्यवाचक पद माना जा सकता है। मुख्य स्वामिनी श्रीराधाकी तरह श्रीयमुना भी श्रीकृष्णके साथ श्रीशिवपार्वतीकी तरह अर्धनरनारीश्वरके रूपमें स्थित हैं; श्रीकृष्णसे सर्वथा संश्लिष्ट। अतः अन्य छः पदोंको इसके साथ विशेषणोंके रूपमें अन्वित माना जा सकता है।

इस तरह दो पदोंके विशेष्यवाचक होनेकी सम्भावनाका विचार करनेके बाद अब हमें यह देखना है कि भगवान्के छः गुण—ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्यरूप धर्मोंमेंसे किसका निरूपण प्रस्तुत कारिकाके किन-किन पदोंसे हो रहा है।

ऐश्वर्य

भगवान्की तरह श्रीयमुना भी अनन्तगुणभूषित हैं।

भगवान्के गुणोंकी गणना अशक्य है, इसी तरह श्रीयमुनाके गुणोंकी गणना भी अशक्य है। प्राकृत गुण-धर्म कालसे परिच्छिन्न होते हैं। अर्थात् किसी निश्चित कालमें उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो जाते हैं। अतएव उन्हें सान्त माना जाता है। भगवान्के गुण कालसे अपरिच्छिन्न होनेके कारण अनन्त माने जाते हैं। श्रीयमुनाके गुण भी कालसे अपरिच्छिन्न होनेके कारण अनश्वर—अनन्त हैं। सर्वसमर्थ ईश्वरके अलावा सभी कुछ कालके वशमें होता है। अतः ईश्वरके ऐश्वर्य-गुणके प्रकट होनेपर ही कालकी अधीनतासे कोई मुक्त हो पाता है। श्रीयमुनामें कालापरिच्छिन्न-अनन्त गुणोंके विद्यमान होनेके कारण भगवान्के ऐश्वर्य-गुणकी विद्यमानता सूचित होती है—'अनन्तगुणभूषिते' विशेषणद्वारा।

वीर्य

देवस्तुतिमें भगवान्के वीर्य-गुणका प्राकट्य स्वीकार किया गया है। देवताओंमें भी श्रेष्ठ-श्रेष्ठ ऐसे महादेव, ब्रह्मा आदि देवगण भगवान्की स्तुति जैसे करते हैं वैसे ही श्रीयमुनाकी भी स्तुति करते हैं। अतः वीर्यवान् देवताओं द्वारा भी संस्तुत होनेके "शिवविरञ्चिदेवस्तुते" विशेषण द्वारा श्रीयमुनामें भगवान्के वीर्य गुणकी भी पराकाष्ठा सूचित होती है।

हिन्दी भावार्थ

यश

दान-दाताओंका यश जगत्‌में सर्वाधिक होता है। ध्रुव, पराशर जैसे तपस्वियोंकी अभिलाषा यमुना-तटपर तपस्या करनेसे सफल हुई थी। इन तपस्वियोंको उनकी तपस्याके फलदानका यश श्रीयमुनाको जाता है। 'ध्रुवपराशराभीष्टदे' विशेषणद्वारा इसी यशोरूप गुणको सूचित किया गया है।

मूलकारिकान्तर्गत, तृतीयपद 'घनाघननिभे'को विशेष्यवाचक माननेके कारण, तृतीय गुणका वर्णन तृतीय पदमें न मानकर चतुर्थ पदमें स्वीकार करना पड़ा है। अन्यथा अन्तिम सातवें पद 'कृपाजलधिसंश्रिते'को विशेष्यवाचक माननेपर क्रमप्राप्त तृतीय-पद 'घनाघननिभे' द्वारा भी श्रीयमुनाके यशोरूप गुणका वर्णन उपपन्न हो सकता है।

सजल-श्यामल मेघ, वृष्टिके द्वारा सृष्टिमें ग्रीष्म-ताप हरते हैं; और तृण-धान्यकी उत्पत्तिके द्वारा जीवनदायक भी बनते हैं। इसी तरह घनश्याम श्रीकृष्ण और कृष्ण-प्रिया श्रीयमुना भी जागतिक तापोंको हरकर जीवको भक्तिमय—आनन्दमय जीवनका दान करते हैं। अतः मेघसे समानताके वर्णनद्वारा यशोरूप गुणका निरूपण 'घनाघन-निभे' विशेषणद्वारा भी सम्भव बन जाता है।

श्री

भगवान्‌के श्री-गुणका रासपञ्चाध्यायीके प्रकरणमें वर्णन उपलब्ध होता है। गोपिकाओंके मानके उपशमके लिए भगवान्‌के तिरोहित होनेका वर्णन वहाँ किया गया है। यों भगवान्‌के तिरोहित होनेके कारण गोपिकाओंमें विरह-ताप और दैन्य प्रकट हुआ। तब यमुना-तटपर भगवान् पुनः प्रकट हुए। सभी गोपिकाओंने भगवान्‌को घेर लिया। गोपिकाओंसे आवृत भगवान्‌की शोभा-श्रीका वर्णन भागवतके—

ताभिर्विधूतशोकाभिर्भगवानच्युतो वृतः। व्यरोचताधिकं तात पुरुषः शक्तिभिर्यथा॥

(भाग० १०।३२।१०) इस श्लोकमें हुआ है। यमुनातट भी गोप-गोपिकाओंसे घिरा हुआ रहता है। अतः 'सकलगोपगोपीवृते' विशेषणद्वारा श्रीयमुनाके भी भगवान्‌के जैसे श्री-गुणका सूचन अभिप्रेत है।

भगवत्सेवकोंकी श्रीके वर्णनद्वारा भी कभी-कभी भगवान्‌के परमकाष्ठापन्न श्री-गुणका वर्णन किया जाता है। वेणु-गीतकी सुबोधिनीमें श्रीमहाप्रभुने यह निरूपण किया है—'श्रियो हि परमाकाष्ठा सेवकास्तादृशा यदि' (सुबो० १०।२१।११)। हमने देखा कि तपस्याके हेतु यमुना-तटका आश्रय लेनेवाले ध्रुव, पराशर प्रभृति तपस्वियोंको दिव्य ऐश्वर्य एवं ज्ञान की उपलब्धि हुई थी। उनकी इस ऐश्वर्य-श्री तथा ज्ञान-श्री के विचार

हिन्दी भावार्थ

करनेपर भी श्रीयमुनाकी श्री या शोभा, कैसी हो सकती है, यह समझा जा सकता है। इस तरह शब्द-क्रमके अनुरोधवश चतुर्थ पद 'ध्रुवपराशराभीष्टदे' विशेषणद्वारा भी श्रीयमुनाके श्री-गुणका वर्णन स्वीकार किया जा सकता है।

ज्ञान

भगवान्‌ने गीतामें कहा है—'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते' (गीता ४।३८)। अतः भगवत्सन्निधित्वात् अथवा यमुना-तटपर बसी हुई होनेके कारण मथुरा नगरीकी विशुद्धताका उल्लेख, भगवान्‌के एवं श्रीयमुनाके ज्ञानरूप गुणके प्रभावका वर्णन है। अतः 'विशुद्धमथुरातटे' विशेषणसे ज्ञान-गुणका सूचन अभिप्रेत है।

वैराग्य

वैराग्ययुक्त व्यक्ति कृपाशील हो सकता है पर लोभीका कृपाशील होना बहुत दुर्लभ बात है। भक्तोंके लिए तो भगवान् इतने कृपाशील हैं कि भगवान्‌में जितनी भक्तानुरक्ति है उतनी आत्मरति नहीं! 'नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना' (भाग० ९।४।६४)। इससे सिद्ध होता है कि भगवान्‌में कृपाजलधि निरन्तर लहराता रहता है। ऐसे कृपाके सागर श्रीश्यामसुन्दरसे श्रीयमुना सङ्गत होती हैं। किसी लौकिक सागरमें यमुनानदी पर्यवसित नहीं होती। इससे यह सिद्ध होता है कि 'कृपा-जलधि-संश्रिते' विशेषणद्वारा श्रीयमुनाकी कृपाशीलता तथा अतएव वैराग्यगुण का सूचन अभिप्रेत है।

हमने यह देख लिया है कि 'कृपा-जलधि-संश्रिते' पद विशेष्यवाचक भी हो सकता है। इसे विशेष्यवाचक पद माननेपर वैराग्य-गुणका वर्णन शब्द-क्रमके अनुरोधवश 'सकलगोपगोपीवृते' विशेषणद्वारा भी स्वीकार किया जा सकता है।

अपने भक्त गोप-गोपिकाओंसे घिरी हुई होनेके कारण श्रीयमुनाकी भक्तोंमें अनुरक्ति और अन्यत्र विरक्ति प्रतीत होती है। जिन भक्तोंको भगवान्‌के साथ किसी भी तरहके सम्बन्ध स्थापित करनेकी कामना है वे यमुना-तटपर एकत्रित होते रहते हैं। श्रीयमुनाके सङ्गसे उन भक्तोंमें भगवान्‌के प्रति निरुपधि स्नेह-भाव प्रकट होता है। श्रीयमुना भगवान्‌की भक्तोंके प्रति और भक्तोंकी भगवान्‌के प्रति प्रीतिको बढ़ानेवाली हैं। भक्तोंके मान आदि दोष दूर कर और इसी तरह विरह-ताप भी दूर करके वे भक्त और भगवान् में परस्पर स्नेहकी अभिवृद्धि करती हैं।

सच्चे वैराग्यका स्वरूप 'भगवच्चरणारविन्दोंमें प्रीति रखते हुए, अपना सब कुछ भगवान्‌को निवेदित कर देना' ही है। भक्त और भगवान् को एक-दूसरेके निकट लानेके लिए मानो श्रीयमुना भक्तोंको भगवान्‌का दान देती हैं और भगवान्‌के चरणोंमें भक्तोंको समर्पित कर देती हैं। यह भक्त और भगवान् के परस्पर मिलनके आयास—कष्ट को दूर करना सच्चा पुष्टिमार्गीय वैराग्य है।

हिन्दी भावार्थ

इस तरह श्रीयमुना और भगवान् श्रीकृष्ण के गुण-धर्म समान हैं। इसीलिए तो बिना किसी आयासके श्रीयमुना भक्तोंका भगवान्‌के साथ सम्बन्ध स्थापित करा सकती हैं।

इन चार श्लोकोंमें श्रीयमुनाके स्वरूप एवं गुण के वर्णन द्वारा यमुना-माहात्म्य निरूपित किया गया है ॥ ४ ॥

◆

यया चरण-पद्मजा मुररिपोः प्रियम्भावुका ;
समागमनतोऽभवत्सकलसिद्धिदा सेवताम् ।
तया सदृशतामियात् कमलजा सपत्नीव यत् ;
हरि-प्रिय-कलिन्दया मनसि मे सदा स्थीयताम् ॥ ५ ॥

हिन्दी श्लोकान्वयार्थ[1]

यया	जिन श्रीयमुनाके साथ
समागमनतः	सङ्गम होनेसे,
चरण-पद्मजा	भगवान्‌के चरण-कमलसे उत्पन्न हुई श्रीगङ्गा,
मुररिपोः	मुरारि भगवान् श्रीकृष्णके
प्रियम्भावुका	प्रियका भावन करनेवाली अर्थात् भगवान्‌को प्रिय कार्योंको करनेवाली, तथा
सेवताम्	अपनी (श्रीगङ्गाकी) सेवा करनेवाले भक्तोंको
सकल-सिद्धिदा	सकल सिद्धियोंको प्रदान करनेवाली
अभवत्	हो गयीं;
तया	उन श्रीयमुनाकी
सदृशताम्	समानताको (केवल)
कमलजा	कमलसे उत्पन्न हुई श्रीलक्ष्मी
इयात्	प्राप्त कर सकती हैं,
यत्	क्योंकि (भगवान्‌की पत्नी होनेके कारण श्रीलक्ष्मी)

---

[1] इस श्लोकसे प्रारम्भ कर ग्रन्थान्त तकका हिन्दी श्लोकान्वयार्थ, विवृत्यर्थ एवं भावार्थ गो० श्रीश्याममनोहरजीके कहनेसे इस कृतिके सम्पादक श्रीकेदारनाथमिश्रने लिखा है।

हिन्दी श्लोकान्वयार्थ

सपत्नी इव	श्रीयमुनाकी सपत्नी-सी हैं।
हरि-प्रिय-कलिन्दया	भगवान्‌के प्रिय भक्तोंके दोषोंको नष्ट करनेवाली वे श्रीयमुना,
मे मनसि	मेरे (श्रीमदाचार्यचरणके) हृदयमें
सदा स्थीयताम् ।	सर्वदा स्थित रहें ॥ ५ ॥

अथ भगवदीयानाम् अपि उत्कर्षाधायिका या तदुत्कर्षं को वक्तुं शक्त इति भावेन आहुः, **यया** इति । **चरण-पद्मजा** गङ्गा । तेन भक्तिमार्गीया निर्दोष-पूर्ण-गुणा अपि, **यया** त्वया सह **समागमनतो** मिलनतो, **हरेः** तथा **अभवत्**, **सेवतां च** तथा । पूर्वं गङ्गाया अन्य-सङ्गति-जनितम् उत्कर्षम् उक्त्वा भगवत्सङ्गति-जनित उत्कर्षः पठितः, **'सा राजन् ! दर्शनादेव ब्रह्महत्यापहारिणी'** इत्यादिरूपः ।

एतादृश्या त्वया सह **सदृशतां** किं कापि **इयाद्** इति काकूक्तिः । यदि इयात्,

हिन्दी विवृत्यर्थ

श्रीयमुना भगवदीयोंमें भी उत्कर्षका आधान करनेवाली हैं। भगवदीयोंको भी उत्कर्ष प्रदान करनेवाली श्रीयमुनाके उत्कर्षका समुचित वर्णन कौन कर सकता है? महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य इसी भावसे कहते हैं कि गङ्गा भगवान्‌के चरण-कमलसे उत्पन्न हुई हैं और इसीलिए भक्तिमार्गीया हैं तथा श्रीयमुना उनमें उत्कर्षका आधान करती हैं।

श्रीमदाचार्यचरणके प्रादुर्भावसे पहले भी (पुराणोंमें) गङ्गाके शिव-जटा एवं सरस्वती आदिसे होनेवाली सङ्गतिसे उत्पन्न होनेवाले उत्कर्षका निरूपण किया गया है और भगवान् (के चरणकमल) की सङ्गतिसे उत्पन्न होनेवाले उत्कर्षका वर्णन भी मिलता है, किन्तु उस उत्कर्षका स्वरूप यह है कि गङ्गा दर्शन करने मात्रसे अपने भक्तोंको ब्रह्महत्या (के समान बड़े-बड़े पापों) से मुक्त कर देती हैं। प्रकृत श्लोकमें श्रीमदाचार्यचरण गङ्गाके यमुना-सङ्गमसे उत्पन्न होनेवाले जिस उत्कर्षका निरूपण कर रहे हैं वह पूर्वोल्लिखित प्रसिद्ध उत्कर्षसे नितान्त भिन्न और विलक्षण है। पूर्वोल्लिखित उत्कर्ष पुष्टिमार्गीय नहीं है जबकि यहाँ श्रीमदाचार्यचरणद्वारा बताया गया उत्कर्ष पुष्टिमार्गीय है। इस पुष्टिमार्गीय उत्कर्षका स्वरूप स्पष्ट करते हुए गो० श्रीविट्ठलनाथ कहते हैं कि जिन श्रीयमुनाके समागमन अर्थात् मिलन या सङ्गम से निर्दोष पूर्णगुणा गङ्गा भी मुरारि भगवान् श्रीकृष्णके प्रियकी भावना करनेवाली अर्थात् भगवान्‌को प्रिय लगनेवाले कार्योंको करनेवाली तथा अपना (अर्थात् गङ्गाका) सेवन करनेवाले भक्तोंको सकल सिद्धियाँ प्रदान करनेवाली हो गयीं ऐसी श्रीयमुनाकी समानता क्या कोई कर सकता है? इस प्रकारके उत्कर्षसे युक्त श्रीयमुनाकी समानता यदि कोई प्राप्त कर

कमलजा इवास्ति । तत्र हेतुम् आहुः, यद् यस्मात्, सा भगवत्पत्नीत्वात् सपत्नी भवति । तत्रापि भवती प्रिया इति इव इति ।

भक्तानुगुणत्वम् आहुः, हरि-प्रियाणां कलि दोषं इति खण्डयति ॥ ५ ॥

हिन्दी विवृत्यर्थ

सकता है तो वह श्रीलक्ष्मी ही हैं क्योंकि वे भगवान्‌की पत्नी होनेके कारण श्रीयमुनाकी सपत्नी-जैसी हैं । यहाँ 'सपत्नी-जैसी' (सपत्नी इव) कहनेमें 'जैसी' (इव) पदका तात्पर्य यह है कि श्रीयमुना तो भगवान्‌की प्रिया हैं ।

श्रीयमुनाकी भक्तानुगुणता बताते हुए आचार्यचरण कहते हैं कि भगवान् श्रीहरिके प्रिय भक्तोंके (कलि अर्थात्) दोषोंको नष्ट कर देनेवाली श्रीयमुना मेरे मनमें सर्वदा स्थिति करें अर्थात् मेरे हृदयमें विराजमान हों ॥ ५ ॥

हिन्दी भावार्थ

चार श्लोकोंमें श्रीयमुनाका उत्कर्ष वर्णन करते हुए उनकी स्तुति की गयी । अब इस पाँचवें श्लोकमें, 'उनका उत्कर्ष-वर्णन अशक्य है' यह निरूपित करते हुए उनके उत्कर्षका बोध कराया जा रहा है ।

चार श्लोकोंद्वारा श्रीयमुनाका उत्कर्ष-वर्णन किया गया । किन्तु उनका उत्कर्ष निरवधिक या असीम है अतः उसके वर्णनका तो कभी अन्त ही नहीं हो सकता । जिस उत्कर्षकी कोई सीमा या अवधि ही न हो उसका वर्णन कहाँ तक किया जा सकता है ! जो संख्या अनन्त है उसे किस-किस संख्यासे अधिक बताते रहा जायेगा ? इसका तो कोई अन्त ही नहीं होगा । तथापि यह अवश्य किया जा सकता है कि हम जहाँ तक गिन पायें वहाँ तक गिनें और तब यह समझकर कि जितना हमने गिना है वह तो उस अगण्य और अकल्पनीय अनन्तताके अंशका भी एक अंशमात्र ही है, इस प्रश्नको यथावत् रहने दें कि अनन्त क्या है । इसी प्रकार श्रीयमुनाके निरवधिक उत्कर्षको जाननेका प्रकार यह हो सकता है कि हम यह समझ जायें कि अनुभववेद्य या लोक-प्रसिद्ध अन्य उत्कर्ष उनके असीम उत्कर्षकी अपेक्षा न्यून एवं नगण्य हैं । उनका निरवधि उत्कर्ष इन लोकप्रसिद्ध उत्कर्षोंसे कितना अधिक है यह तो नहीं जाना जा सकता फिर भी अन्य लोकप्रसिद्ध उत्कर्षोंकी अवधि या सीमा के उल्लेखसे उस निरवधिक उत्कर्षको सूचित किया जा सकता है । इसी दृष्टिसे इस पाँचवें श्लोकमें अन्य उत्कर्षोंकी सीमा या इयत्ता का निरूपण किया जा रहा है और इस अन्योत्कर्षावधिरूप विषयान्तरके निरूपणकी ओर संकेत करनेके लिए ही श्रीमत्प्रभुचरणने इस श्लोककी विवृतिका प्रारम्भ अर्थान्तरोपक्रम-बोधक 'अथ' शब्दसे किया है ।

हिन्दी भावार्थ

श्रीयमुना भगवदीयोंमें भी उत्कर्षका आधान करनेवाली हैं । भगवदीयता परमोत्कर्ष है जो भगवदनुग्रहैकलभ्य है अर्थात् वह उन्हें ही प्राप्त होती है जिनमें इसका आधान स्वयं भगवान् कृपापूर्वक कर देते हैं । श्रीयमुना इन भगवदीयोंमें भी उत्कर्षातिशयका आधान करनेवाली हैं । गो० श्रीद्वारकेशजीके अनुसार विवृतिमें 'भगवदीयानाम्' इस बहुवचनान्त पदके प्रयोगसे श्रीमत्प्रभुचरणका अभिप्राय लक्ष्मी, गङ्गा, सरस्वती और तुलसी से है । इनमेंसे लक्ष्मी पद्मजा हैं । लक्ष्मीके कमलसे उत्पन्न होनेका निरूपण विष्णुपुराणके लक्ष्म्यवतार-प्रतिपादक,

'पुनश्च पद्मादुद्भूता आदित्योऽभूद्यदा हरिः' (विष्णुपु० १।९।१४२)

इत्यादि वाक्योंमें तथा उल्लेख इन्द्रकृत,

'नमस्ये सर्वभूतानां जननीमब्जसम्भवाम्' (विष्णुपु० १।९।११७)

इत्यादि स्तुतिमें स्पष्टतया मिलता है । गङ्गा और तुलसी चरणपद्मजा हैं । गङ्गाके चरणपद्मजा होनेका उल्लेख करनेवाली पौराणिक कथाओंका सङ्केत गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमने अपनी विवृतिमें किया है । सरस्वती मुखपद्मजा हैं जैसाकि श्रीमद्भागवतकी,

प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती; वितन्वताजस्य सतीं स्मृतिं हृदि ।
स्वलक्षणा प्रादुरभूत्किलास्यतः; स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम् ॥ (भाग० २।४।२२)

इस स्तुति-वाक्यसे स्पष्ट है । ये सभी भगवदीय होनेसे उत्कर्षशालिनी हैं किन्तु श्रीयमुना इनमें भी और अधिक उत्कर्षका आधान कर देती हैं । ऐसी श्रीयमुनाके उत्कर्ष-वर्णनका अशक्य होना युक्त ही है । इसीलिए श्रीमत्प्रभुचरण कहते हैं कि भगवदीयोंमें भी उत्कर्षका आधान करनेवाली श्रीयमुनाके उत्कर्षका वर्णन कौन कर सकता है ?

गङ्गाके लिए श्रीमदाचार्यचरणने यहाँ 'चरणपद्मजा' पदका प्रयोग किया है । इस विषयमें गो० श्रीहरिरायका स्पष्टीकरण यह है कि जिस प्रकार भगवान्‌के नाभि-कमलसे उत्पन्न होनेवाले ब्रह्माने स्वयं निरपेक्ष होते हुए भी, भगवान्‌के प्रपञ्चमें क्रीडा करनेके लिए, उनकी आज्ञा पाकर, प्रपञ्चकी सृष्टि की थी; उसी प्रकार, भगवान्‌के चरणकमलसे उत्पन्न होनेवाली गङ्गा भी स्वान्तर्गत भगवच्चरणरेणु द्वारा भगवत्सेवोपयोगी देह सम्पादित कर, भगवान्‌की भक्तिमार्गको प्रकट करनेकी इच्छाको जानकर, स्वयं निरपेक्ष होती हुई भी, भगवत्क्रीडाके लिए, भगवदीयोंकी सृष्टि करती हैं । वे भगवान्‌से साक्षाद्रूपसे सम्बद्ध होनेके कारण उनका हार्दिक अभिप्राय जानती हैं, अतः उन्हें पूर्वोक्त सृष्टि करनेके लिए उस प्रकारकी भगवदाज्ञाकी भी अपेक्षा नहीं होती जिस प्रकारकी (सृष्टि करनेकी) भगवदाज्ञाकी अपेक्षा ब्रह्माको थी । इस आशयसे ही श्रीमदाचार्यचरणने गङ्गाको 'चरणजा' न कहकर 'चरणपद्मजा' कहा है ।

चरणपद्मजा होनेसे गङ्गा भक्तिमार्गीया हैं । भगवान्‌के निर्दोष-पूर्णगुण चरणार-

हिन्दी भावार्थ

विन्दोंको पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तमें भक्तिरूप माना गया है। 'कारणके गुण कार्यके गुणोंके आरम्भक होते हैं' इस स्वाभाविक नियमके अनुरूप निर्दोष-पूर्णगुण एवं भक्तिरूप भगवच्चरणारविन्दोंसे उत्पन्न गङ्गामें भी अपने कारणके धर्म निर्दोष-पूर्णगुणता एवं भक्तिरूपता सङ्क्रान्त हो गये हैं। इसीलिए ऐसी गङ्गाका जो उनके उक्त स्वरूपकी भावनापूर्वक सेवन करते हैं, उनमें भी भक्तिका उदय होता है। इस प्रकार गङ्गाको भक्तिरूप भगवच्चरणकमलसे उत्पन्न होनेके कारण भक्तिमार्गीया कहा गया है।

पुष्टिमार्गीया एवं सर्वाङ्गसम्बन्धिनी श्रीयमुनाके सम्मिलनसे पूर्वोक्त भक्तिमार्गीया गङ्गा भक्तोंके मार्गके प्रतिबन्धकोंके विनाशक और उनके दुःखोंको दूर करनेवाले मुरारि भगवान् श्रीकृष्णकी 'प्रियम्भावुका' तथा श्रीयमुनाजलमिश्रित गङ्गाजलका सेवन करनेवाले भक्तोंको 'सकलसिद्धिदा' हो गयी।

'प्रियम्भावुका' पदकी व्याख्या दो प्रकारसे की गयी है। श्रीयमुनाके सङ्गमसे गङ्गा भी भगवान्की प्रियम्भावुका अर्थात् जिससे भगवान्का प्रिय हो उसे करनेवाली या साक्षाद्भगवत्सेवोपयोगी शरीरकी उत्पत्तिकी साधिका हो जाती हैं। श्रीयमुना साक्षाद्भगवत्सेवोपयोगी देह सम्पादित कर सेवकोंकी सृष्टि कर उन सेवकों द्वारा की जानेवाली भगवत्सेवा—जो प्रभुको निरतिशय प्रिय है—द्वारा भगवान् श्रीकृष्णके प्रियका भावन (साक्षात् एवं परम्परया दोनों प्रकारसे) करती हैं और इसीलिए प्रभुकी प्रियम्भावुका हैं। उक्त श्रीयमुनासे सङ्गत होनेसे गङ्गा भी उसी प्रकार भगवत्सेवोपयोगी शरीरकी उत्पत्तिकी साधिका अर्थात् भगवत्सेवौपयिक देह सम्पादित कर भगवत्सेवकोंकी सृष्टि कर उन भगवत्सेवकों द्वारा की जानेवाली भगवत्सेवा द्वारा भगवत्प्रियम्भावुका (भगवान्का प्रिय भावन करनेवाली) हो गयी। व्याकरण-शास्त्रकी दृष्टिसे 'प्रियम्भावुका' पदकी एक अन्य व्युत्पत्ति करते हुए गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तम कहते हैं कि व्याकरणके नियमोंके अनुसार इसका अर्थ यह है कि अप्रिया गङ्गा भी श्रीयमुनाके सङ्गमसे प्रभुकी प्रिया हो गयी। भूत-भौतिकत्वके कारण एवं चरणक्षालनरूप जल होनेके कारण गङ्गा अप्रिय थी किन्तु श्रीयमुनाके सङ्गमसे वे भगवान्की प्रिया हो गयी।

'सकलसिद्धिदा' पदकी व्याख्या भी दो प्रकारसे की गयी है। श्रीयमुना सारी सिद्धियोंका दान करनेवाली हैं और उनके सङ्गमसे गङ्गा भी अपना (अर्थात् श्रीयमुना-जलमिश्रित गङ्गाजलका) सेवन करनेवालोंको सारी सिद्धियोंका दान करनेवाली हो गयी हैं। उक्त पदकी दूसरी व्याख्या करते हुए गो० श्रीद्वारकेश कहते हैं कि श्रीयमुना सकल अर्थात् सारी कलाओंसे युक्त भगवान् श्रीकृष्ण की सिद्धि अर्थात् प्राप्ति का दान करनेवाली हैं और उनके सङ्गमसे गङ्गा भी वैसी ही हो गयी हैं।

हिन्दी भावार्थ

जिसमें जो समाविष्ट होता है उसमें उसके कार्य होने लगते हैं, जैसे भक्तमें जब भगवदावेश होता है तो वे भी भगवान्की-सी चेष्टाएँ करने लगते हैं, जैसा कि श्रीमद्भागवतमें 'लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः' (भाग० १०।३०।१४) अर्थात् 'भगवदावेश हो जानेसे भगवन्मय हो गयी गोपियाँ भगवान्की विभिन्न लीलाओंका अनुकरण करने लगीं' (भाग० १०।३०।१४) इत्यादि कह कर गोपियोंद्वारा पूतनापयःपान, शकटभञ्जन, तृणावर्तहरण, वत्सासुर-वध, बकासुर-वध, वंशी-वादन, गोवर्द्धन-धारण, कालिय-दमन, उलूखल-बन्धन (भाग० १०।३०।१५-२३) आदि भगवल्लीलाओंका अनुकरण करनेका निरूपण मिलनेसे सिद्ध होता है। अतः भगवत्प्रियम्भावुका और सकलसिद्धिदात्री श्रीयमुनाके गङ्गामें समाविष्ट हो जानेपर गङ्गाका भी भगवत्प्रियम्भावुका एवं सकलसिद्धिदात्री हो जाना उपपन्न ही है।

गङ्गाके 'अन्य-सङ्गति-जनित' उत्कर्षका वर्णन श्रीमदाचार्यचरणके प्रादुर्भावके पहले भी (पुराणोंमें) किया गया मिलता है। इस 'अन्य-सङ्गति' पदका अर्थ गो० श्रीहरिराय एवं गो० श्रीद्वारकेश ने 'सरस्वती-सङ्गम' और गो० श्रीपुरुषोत्तमने 'कुटिलजलावरण-जलशिवजटादिसङ्गति' किया है। इस सन्दर्भमें गो० श्रीपुरुषोत्तमने गङ्गासम्बन्धी विभिन्न पौराणिक कथाओंका भी उल्लेख किया है। श्रीयमुनाका गङ्गासे जहाँ सम्मिलन होता है उस सङ्गम-स्थलपर स्नान एवं देह-त्याग का फल,

सितासिते सरिते यत्र सङ्गते तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते॥

इस ऋचामें स्वर्ग एवं अमृतत्व-प्राप्ति बताया गया है। इस प्रकार गङ्गाका उत्कर्ष-वर्णन पहले भी किया गया है किन्तु उसका स्वरूप,

'सा राजन्! दर्शनादेव ब्रह्महत्यापहारिणी।' इत्यादि पुराणोक्तिके अनुसार ब्रह्महत्यादिरूप महापातकके समान पापोंसे छुटकारा दिलाना आदि ही है।

किन्तु श्रीमदाचार्यचरणने इस श्लोकमें गङ्गाके जिस उत्कर्षका वर्णन किया है वह पूर्वोल्लिखित प्रसिद्ध उत्कर्षोंसे भिन्न एवं विलक्षण है। यहाँ श्रीयमुनाके सङ्गमसे गङ्गाने भगवत्प्रियम्भावुकात्व एवं सेवक सकल-सिद्धि-दातृत्व के आधानका निरूपण किया है। यह पुष्टिमार्गीय उत्कर्ष है। पुष्टिमार्गमें पुरुषार्थ, साधन, फल एवं उत्कर्ष सब कुछ विलक्षण ही है। जैसा कि श्रीमदाचार्यचरणने,

पुष्टिमार्गे हरेर्दास्यं धर्मोऽर्थो हरिरेव हि।
कामो हरेर्दिदृक्षैव मोक्षः कृष्णस्य चेद् ध्रुवम्॥

इस कारिकामें कहा है पुष्टिमार्गमें धर्मका स्वरूप है भगवद्दास्य, अर्थ स्वयं भगवान् हरि है, काम भगवद्दर्शन-लालसा है और मोक्ष भगवदीयत्व। इसी प्रकार साधनका स्वरूप

हिन्दी भावार्थ

बताते हुए गो० श्रीहरिराय कहते हैं,

सर्व-साधन-राहित्यं फलाप्तौ यत्र साधनम् ।
फलं वा साधनं यत्र पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥

पुष्टिमार्गीय फलका स्वरूप श्रीमत्प्रभुचरणने,

श्रीवल्लभाचार्यमते फलं तत्प्राकट्यमत्राव्यभिचारिहेतुः ।
प्रेमैव तस्मिन्नथवोक्तभक्तिस्तत्रोपयोगोऽखिल-साधनानाम् ॥

इस कारिकामें बताया है । इसी प्रकार अन्यत्र प्रसिद्ध उत्कर्ष भी पुष्टिमार्गीयके लिए अनतिमहत्त्वपूर्ण हैं और उसकी उनमें कोई रुचि नहीं है । वे उत्कर्ष ब्रह्महत्यादिके समान महापापसे मुक्त कर देनेका सामर्थ्य आदि या इसी प्रकारके अन्य सामर्थ्य आदि हो सकते हैं । किन्तु जिनके पुरुषार्थरूप अर्थ भगवान् ही हों वे पुष्टिमार्गीय हों, जैसा कि भगवान् स्वयं कहते हैं, 'स्वर्गापवर्ग-नरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः' (भाग० ६।१७।२८) अर्थात् स्वर्ग, मोक्ष और नरक में समान दृष्टि रखनेवाले होते हैं; और पापोंका फल अधिक-से-अधिक नरक ही तो हो सकता है । अतः उनकी दृष्टिमें पूर्वोक्त प्रकारके उत्कर्ष अकिञ्चित्कर हैं । उनकी दृष्टिमें जो उत्कर्ष है उसका निरूपण श्रीमदाचार्यचरणने यहाँ किया है । गो० श्रीहरिराय कहते हैं कि श्रीमन्महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यके प्रादुर्भावके पूर्व श्रीयमुनाके भगवत्प्रियत्वमातृका रूपका लोगोंको ज्ञान नहीं था, इसीलिए उनके पहले गङ्गाके इस श्रीयमुनासङ्गमजन्य उत्कर्षका निरूपण नहीं मिलता है । इस उत्कर्षका निरूपण श्रीमदाचार्यचरणने ही (स्वानुभवके आधारपर) किया है । अतएव गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तम कहते हैं कि इस उत्कर्षकी सिद्धि श्रीमदाचार्यचरणके प्रत्यक्षरूपक वाक्योंसे ही होती है, इसीलिए इसकी सिद्धिके लिए श्रीमत्प्रभुचरणने अपनी विवृतिमें और गो० श्रीपुरुषोत्तमने अपनी विवृति-विवृतिमें कोई अन्य प्रमाण उपन्यस्त नहीं किया है । इस प्रकार श्रीमदाचार्यचरणने यहाँ गङ्गाके जिस श्रीयमुनासङ्गमजन्य उत्कर्षका निरूपण किया है वह पुष्टिमार्गीय है ।

स्वसम्बन्धसे सम्बद्ध व्यक्तिमें भी अपने ही समान गुणोंका आपादन कर देनेवाली अर्थात् अपने सम्बन्धमात्रसे अन्य (गङ्गा) को भी भक्तोंके लिए अपने ही समान उपकारक बना देनेवाली भक्तानुगुणा श्रीयमुनाकी समता कौन कर सकता है ?

कमला लक्ष्मी भी भगवान्‌की पत्नी हैं । क्या वे श्रीयमुनाके सदृश हैं ? क्या श्रीयमुनासे लक्ष्मीकी तुलना या समानता हो सकती है ? श्रीयमुनासे लक्ष्मीकी सदृशता केवल भगवत्पत्नी होनेतक (अर्थात् सपत्नीत्वमात्रमें) ही है । वस्तुतः दोनोंमें महान् अन्तर है । श्रीमत्प्रभुचरण कहते हैं कि यद्यपि लक्ष्मी भी श्रीयमुनाकी ही तरह भगवत्पत्नी हैं तथापि श्रीयमुना तो भगवान्‌की प्रिया भी हैं । इस प्रकार श्रीयमुनामें भगवत्प्रियात्व, पुष्टिमार्गीय-लीला-सम्बन्धित्व एवं भक्तानुगुणत्व आदि रूप वैशिष्ट्य है, अतः लक्ष्मीको भी उनके समान नहीं कहा जा सकता । गोस्वामी श्रीद्वारकेश कहते हैं कि जिस प्रकार श्रीयमुनाने गङ्गाको पुष्टिमार्गीय-लीलास्थ भक्तोंके अनुगुण बना दिया उस प्रकार लक्ष्मी किसीको भी (पुष्टिमार्गीय-लीलास्थ भक्तोंके अनुगुण) नहीं बनातीं, अतः श्रीयमुनासे भगवत्पत्नीत्वरूप आंशिक सादृश्य ही होनेके कारण श्रीमहाप्रभुने उन्हें श्रीयमुनाकी 'सपत्नी-जैसी' (सपत्नी इव) ही कहा है, श्रीयमुनाके सदृश नहीं ।

हिन्दी भावार्थ

श्रीयमुनाके भक्तानुगुणत्वरूप वैशिष्ट्यकी व्याख्या, श्रीमत्प्रभुचरणने विवृतिमें 'हरिप्रियाणां कलिं हन्ति' कहकर की है, जिसका अनुवाद गोस्वामी श्रीद्वारकेशने अपनी अन्वयबोधिनीमें 'भगवतः प्रियाणां कलेः खण्डनकर्त्री' इस वाक्यसे किया है । श्रीमत्प्रभुचरणके वाक्यकी व्याख्या दो प्रकारसे की गयी है । गो० श्रीहरिरायकृत व्याख्याके अनुसार भगवान् हरिके प्रिय भक्त गुणसम्पन्न हैं यह तो उनके भगवत्प्रिय होनेका निरूपण करनेवाले 'हरिप्रिय' पदसे ही स्पष्ट है; अतः श्रीयमुनाका भक्तानुगुणत्व उन भक्तोंमें होनेवाले दोषोंका निवर्तक होनेमें है । वे भगवान् श्रीहरिके प्रिय भक्तोंके कलि अर्थात् दोष को दूर करती हैं । गो० श्रीपुरुषोत्तमके इस कथनसे कि इस श्लोकमें श्रीयमुनाके भगवत्प्रिय-कलि-निवारकत्वरूप पञ्चम ऐश्वर्यका प्रतिपादन है, गो० श्रीहरिरायकृत पूर्वोक्त व्याख्याकी पुष्टि होती है । किन्तु गो० श्रीपुरुषोत्तमने विवृतिके पूर्वोल्लिखित वाक्यकी एक अन्य व्याख्या अधोलिखित प्रकारसे की है । श्रीयमुना भगवान् श्रीहरिकी अतिप्रिया और अतएव लक्ष्मीकी अपेक्षा अधिक उत्कर्षशालिनी हैं इसका ज्ञान आर्थलिङ्गिक अनुमानसे होता है । लक्ष्मी, उनकी अंशरूपा या उनके आवेशवाली भगवत्प्रियाएँ जब सापत्न्यभावसे परस्पर ईर्ष्यादियुक्त हो जाती हैं तो गुणातीता श्रीयमुना भगवान्‌को उन प्रियाओंके (हरिप्रियाणां) उस ईर्ष्यादिरूप कलिको दूर कर देती हैं (कलिं हन्ति, खण्डयति) और यही श्रीयमुनाके अतिप्रिया होनेका बीज या मूल कारण है ।

जो स्वसम्बन्धमात्रसे अन्यको भी भक्तोंके लिए अपने ही समान उपकारक बना देती हैं वे श्रीयमुना स्वयं कितनी उपकारक होंगी; अतः श्रीमहाप्रभु प्रार्थना करते हैं कि पूर्वोक्त गुणोंवाली श्रीयमुना हमारे मनमें सर्वदा स्थिति करें । मन सारे भावोंका अभिधान है अतः यदि पूर्वोक्त धर्मोंसे युक्त श्रीयमुना मनमें निरन्तर स्थिति करेंगी तो हृद्गत भावोंका निर्दोषपूर्णगुणत्व बना रहेगा । इस प्रकार हृदयमें श्रीयमुनाकी स्थिति होनेका फल भगवत्स्थितत्व होगा अतः उक्त प्रार्थनामें ही भगवत्स्थितिस्वरूप फल देनेकी प्रार्थनाका भी समाहार हो गया है ।

इस श्लोकमें श्रीयमुनासे हृदयमें सदा स्थित रहनेकी प्रार्थना की गयी है किन्तु इसका जो अर्थ ऊपर किया गया है उसके अनुसार इसमें कोई सम्बोधन-सूचक पद

हिन्दी भावार्थ

प्रयुक्त नहीं हुआ है। श्रीबालकृष्ण भट्टने अपने 'निर्णयार्णव' ग्रन्थकी द्वितीय तरङ्गमें (पृष्ठ २६ पर) इस विषयपर विचार करते हुए 'हरिप्रियकलिन्दया' पदका पूर्वोक्त अर्थोंसे भिन्न एक अन्य अर्थ किया है और इसे सम्बोधन-सूचक पद बताया है। उनके अनुसार यमुना सूर्यमण्डलसे कलिन्दको जाती है अतः 'कलिन्दं याति इति कलिन्दयाः' इस व्युत्पत्तिसे सम्बोधन-सूचक 'कलिन्दयाः' पद निष्पन्न होता है जो प्रकृत प्रसङ्गमें (परवर्ती 'मनसि' पदके कारण व्याकरणके नियमोंके अनुसार) 'कलिन्दया' हो गया है। गो० श्रीपुरुषोत्तमके अनुसार इसके पहले चतुर्थ श्लोकमें कई सम्बोधन-सूचक पद आ चुके हैं और इस श्लोकमें भी उन्हींकी अन्विति हो जानेसे किसी नवीन सम्बोधन-सूचक पदका प्रयोग आवश्यक नहीं है। गो० श्रीद्वारकेशने 'हे प्रिये' सम्बोधनका अध्याहार किया है। प्रकृत श्लोकमें श्रीयमुनासे 'हरिप्रियकलिन्दया' पदमें उल्लिखित रूपसे हृदयमें प्रतिष्ठित होनेकी प्रार्थना की गयी है और इस श्लोकके प्रतिपाद्य श्रीयमुनाके पञ्चम ऐश्वर्य 'हरिप्रिय-कलि-निवारकत्व' का संसूचन भी इसी पदसे होता है, अतः गो० श्रीश्याम-मनोहरके अनुसार "'हरिप्रियकलिन्दे' ऐसा भी अध्याहार कर सकते हैं।"

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है इस पाँचवें श्लोकमें श्रीयमुनाके भगवत्प्रिय-कलि-निवारकत्वरूप पञ्चम ऐश्वर्यका निरूपण किया गया है ॥ ५ ॥

◆

नमोऽस्तु यमुने ! सदा तव चरित्रमत्यद्भुतम् ;
न जातु यम-यातना भवति ते पयःपानतः ।
यमोऽपि भगिनीसुतान्कथमु हन्ति दुष्टानपि ;
प्रियो भवति सेवनात् तव हरेर्यथा गोपिकाः ॥ ६ ॥

हिन्दी श्लोकान्वयार्थ

यमुने !	हे श्रीयमुने !
सदा नमोऽस्तु ।	आपको सर्वदा नमन हो (आपको सर्वदा नमन कर सकूँ ऐसी प्रार्थना है)।
तव चरित्रम्	आपका चरित्र
अत्यद्भुतम् ।	अति अद्भुत है।
ते पयःपानतः	आपके जल (अथवा दुग्ध) का पान करनेसे व्यक्तिको

हिन्दी श्लोकान्वयार्थ

जातु	कभी भी
यम-यातना	यमराज द्वारा दी जाने वाली विशेष यातनाएँ
न भवति ।	नहीं भोगनी पड़ती हैं।
यमः अपि	सूर्यपुत्र यमराज भी
दुष्टान् अपि भगिनीसुतान्	अपनी बहिन सूर्यपुत्री यमुनाका पयःपान करनेवाले अपने भागिनेयोंको, भले ही वे दुष्ट ही क्यों न हों,
कथमु हन्ति ?	भला कैसे मार सकते (अर्थात् यमयातना दे सकते) हैं ?
तव सेवनात्	आपका सेवन करनेसे व्यक्ति;
यथा गोपिकाः तथा	जिस प्रकार गोपियाँ (आपका सेवन करनेसे श्रीकृष्णको अतिशय प्रिय हो गयी थीं) उसी प्रकार
हरेः प्रियो भवति ।	भगवान् श्रीहरिका प्रिय बन जाता है।

एतादृश्यां त्वयि नमनातिरिक्तं न वक्तुं शक्यम् इत्याशयेन आहुः, **नमोऽस्तु** इति। त्वयि नमनम् अपि दुर्लभम् अतः प्रार्थ्यते, अस्तु इति। अद्भुतत्वम् एव अग्रे उपपादितम् ॥ ६ ॥

हिन्दी विवृत्यर्थ

ऐसी (अर्थात् पूर्वोक्त प्रकारकी) श्रीयमुनासे प्रणाम निवेदन करनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता, इस आशयसे श्रीमहाप्रभु इस श्लोकका प्रारम्भ करते हुए कहते हैं, हे श्रीयमुने ! आपको सदा नमस्कार हो। वस्तुतः श्रीयमुनाको प्रणाम निवेदन कर पाना भी दुर्लभ है, अतः उन्हींकी प्रार्थना करते हुए श्रीमहाप्रभु कहते हैं कि आपसे यह प्रार्थना है कि हम आपको नमस्कार कर सकें और वह भी सदा नमस्कार कर सकें। श्रीयमुनाका चरित्र अति अद्भुत है। उनके चरित्रकी यह अद्भुतता क्या है इसीका उपपादन आगे अर्थात् श्लोकके शेष अंशमें किया गया है। उनके चरित्रकी यह अद्भुतता यही है कि उनके पय (जल अथवा दुग्ध) का पान करनेसे व्यक्तिको यमराजद्वारा प्राणियोंको दी जानेवाली विविध यातनाएँ नहीं भोगनी पड़ती हैं, क्योंकि यमराज भी (अपनी बहिन यमुनाका पयपान करनेसे उनके पुत्र और अपने भागिनेय (के तुल्य) हो गये व्यक्तियोंको—भले ही वे दुष्ट ही क्यों न हों—कैसे मार सकता है

हिन्दी विवृत्यर्थ

अर्थात् उन्हें यम-यातना कैसे दे सकता है? श्रीयमुनाकी सेवा करनेसे व्यक्ति भगवान् श्रीकृष्णका उसी प्रकार प्रिय बन जाता है जिस प्रकार (श्रीयमुनाकी सेवा करनेसे) गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्णकी प्रिय बन गयी थीं ॥ ६ ॥

हिन्दी भावार्थ

श्रीयमुना भगवदीयोंमें भी उत्कर्षका आधान करनेवाली, भक्तानुगुणा, भगवत्प्रिय भक्तोंके दोषोंका निवारण करनेवाली एवं निरस्तसाम्यातिशया भगवत्प्रिया हैं। उनकी महिमा अवर्णनीय है। वे भक्तोंका जो उपकार करती हैं उसका प्रत्युपकार कर सकना भक्तोंके लिए असम्भव है। वे तो—श्रीयमुनाके पूर्वोक्त विलक्षण माहात्म्यका ज्ञान हो जानेपर—उन्हें नमन मात्र कर सकते हैं, इससे अधिक कुछ नहीं। किन्तु भक्तोंके लिए श्रीयमुनाको नमन कर सकनेका यह सौभाग्य भी सुलभ नहीं, परम दुर्लभ है। भक्तोंको, सम्भव है—शास्त्रप्रसिद्ध भगवन्माहात्म्यका स्वाध्याय, गुरूपदेश आदिसे ज्ञान हो जानेके कारण—भगवान्‌को नमस्कार करनेका अवसर प्राप्त हो जाये, परन्तु भगवत्कृपाङ्कुरके विना श्रीयमुनाको—उनके श्रीमदाचार्यचरणनिरूपित इस विलक्षण माहात्म्यका पूर्ण ज्ञान न होनेके कारण—इस भावसे नमस्कार कर सकनेका सौभाग्य अत्यन्त दुर्लभ है। दुर्लभ एवं अभिलषणीय वस्तु ही प्रार्थनीय होती है और उसकी प्राप्तिके लिए हम उसे दे सकनेमें समर्थ व्यक्तिसे प्रार्थना करते हैं। इसीलिए श्रीमन्महाप्रभु श्रीयमुनासे प्रार्थना करते हैं कि हे श्रीयमुने! हम आपको सदा नमन कर सकें या आपको सदा नमन हो, नमोऽस्तु यमुने सदा।

इस सन्दर्भमें गो० श्रीपुरुषोत्तम लिखते हैं कि भगवत्कृपाके विना जीवको यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सकता कि वह श्रीयमुनाको पूर्वोक्त भावसे नमन कर सके, क्योंकि उसके विना जीवमें उक्त प्रकारके नमनके लिए अपेक्षित श्रद्धाका उदय होना ही सम्भव नहीं है। भगवत्कृपा होनेपर ही श्रीयमुनाके पुष्टिमार्गीय स्वरूपका ज्ञान और उससे श्रद्धाका उदय एवं नमन होता है; तथा श्रीयमुनाकी कृपा होनेपर भगवत्कृपा होती है: इन वाक्योंमें आपाततः अन्योऽन्याश्रय प्रतीत होता है, परन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। सर्वप्रथम भगवान् अनुग्रह करके जीवमें भक्तिके उस बीजभावका आधान करते हैं जिससे वह प्रवाहमार्गीय एवं मर्यादामार्गीय जीवोंसे विलक्षण अर्थात् पुष्टिमार्गीय बनता है, और उसे श्रीयमुनाके पुष्टिमार्गीय स्वरूपका, उनके वैलक्षण्य और परमोत्कर्ष का ज्ञान होता है; तब उसमें श्रीयमुनाके प्रति श्रद्धातिशयका उद्रेक होता है और वह नमनमें प्रवृत्त होता है। तदनन्तर श्रीयमुनाकी कृपासे वह भगवान्‌का परम-प्रिय, उनके विशेष अनुग्रहका विषय बनता है। इस प्रकार श्रीयमुनाको पुष्टिमार्गीय भावसे किया जानेवाला नमन

हिन्दी भावार्थ

अति दुर्लभ वस्तु है और उसके लिए जिस श्रद्धाकी अपेक्षा है उसका उदय निश्चय ही भगवत्कृपाङ्कुरके विना नहीं हो सकता।

वस्तुतः विना कृपाके श्रीयमुनाके पुष्टिमार्गीय स्वरूपका बोध और उस भावसे नमन सम्भव नहीं है, अतएव यहाँ 'नमोऽस्तु' कहकर प्रार्थना की जा रही है कि हम नमन कर सकें। 'नमोऽस्तु' का अर्थ प्रार्थनात्मक ही है और इसका अन्य प्रकारसे अर्थ करना उपयुक्त नहीं है, यह स्पष्ट करते हुए गो० श्रीपुरुषोत्तम लिखते हैं कि जैसा कि श्रीमत्प्रभुचरण कहते हैं आगे चलकर इसी श्लोकमें श्रीयमुनाके चरित्रकी अद्भुतताका उपपादन किया गया है; उसके साथ 'नमोऽस्तु' पदका समन्वय करनेपर इसका यह अर्थ सुस्पष्ट हो जाता है कि श्रीयमुनाका चरित्र इतना अद्भुत है कि उनका नमन भी अति दुर्लभ एवं प्रार्थनीय है; इसीलिए श्रीमदाचार्यचरण प्रार्थना कर रहे हैं कि 'नमन हो' अर्थात् हम नमन कर सकें (नमोऽस्तु)।

श्रीयमुनाका चरित्र अति अद्भुत है। महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यने भगवान् श्रीकृष्णको अद्भुतकर्मा कहा है ('नमो भगवते तस्मै कृष्णायाद्भुतकर्मणे'—तत्त्वा० १।१) और श्रीयमुनाको अति अद्भुत कर्म या चरित्रवाली।

भगवान्‌के अद्भुत कर्मका स्वरूप श्रीवल्लभाचार्यने 'असाधनं साधनं करोति' (तत्त्वा० प्र० १।१) इत्यादि कहकर बताया है। इसका तात्पर्य यह है कि भगवान् अपने प्रमेयबल (या स्वरूपबल) को प्रकटकर जीवोंका उद्धार करनेके लिए (लोक एवं वेद में भगवत्प्राप्तिरूप साध्य-विशेषकी प्राप्तिके लिए जिसे साधन नहीं माना जाता उस (साधन) से ही उक्त साध्यविशेषकी प्राप्ति करा देते हैं और इस प्रकार) जो जिस साध्यका साधन नहीं था उसे भी उसका साधन बना देते हैं। गो० श्रीहरिरायका कथन है कि भगवद्भावना-पूर्वक किये गये होनेके कारण भगवद्विषयक काम एवं द्वेष आदि भी भगवत्प्राप्तिके साधन बन जाते हैं। काम, भय एवं द्वेष आदि स्वरूपतः भगवत्प्राप्तिके साधन नहीं हैं, किन्तु गोपियों, कंस एवं शिशुपाल आदिके प्रसङ्गमें 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ' भगवान्‌ने अपने प्रमेयबलको प्रकट कर उन्हें भी अपनी प्राप्तिका साधन बना दिया। गोपियाँ क्या कर सकती हैं जब भगवान् स्वयं उनके सामने ऐसे स्वरूपसे प्रकट होते हैं कि उनमें वैसे भाव स्वयं उत्पन्न हो जाते हैं और इस प्रकार उनमें उत्पन्न हुए वे भाव भगवद्विषयक होनेसे भगवत्प्राप्तिका साधन बन जाते हैं? भगवान् जहाँ स्वयं काम, भय या क्रोध के विषय बन गये वहाँ वे (अर्थात् कामादि) भी उनकी प्राप्तिके साधन हो गये। इसीलिए श्रीमद्भागवतमें कहा गया है,

गोप्यः कामाद् भयात्कंसः द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः। (भाग० ७।१।३०)।

वस्तुतः 'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः' (कठोप० १।२।२३; मुण्डक० ३।२।३) इस श्रुति-

हिन्दी भावार्थ

वाक्यके अनुरूप ही भगवान् जिसको प्राप्त होना चाहते हैं उसे बिना किसी साधनके ही प्राप्त हो जाते हैं। ऐसी स्थितिमें भगवत्प्राप्तिके साधन स्वयं भगवान् ही होते हैं (लोक-वेद-प्रसिद्ध अन्य विभिन्न साधन नहीं) और उनकी यह साधनता उन विविध रूपोंमें प्रकट होती है जिन रूपोंमें वे (भगवान्) भावनाके विषय बनते हैं।

श्रीयमुना अति अद्भुत कर्म या चरित्र वाली हैं इस आचार्योक्तिकी व्याख्या करते हुए गो० श्रीहरिराय कहते हैं कि किसीको प्यास लगी और उसने (उस प्यासकी शान्तिके लिए) श्रीयमुनाका जल पी लिया। ऐसे व्यक्तिकी यह भावना तो होती नहीं कि श्रीयमुना भगवान्की परम-प्रिया और जीवोंपर दया करनेवाली हैं तथा उनका पयःपान यम-यातनासे मुक्ति और भगवत्कृपा-प्राप्ति का साधन है। वह तो पिपासासे (न कि यम-यातनासे) मुक्तिके लिए ही यमुनाजलका पान करता है। अतः ऐसी स्थितिमें पूर्वोक्त भावनाके अभावमें पयःपानको यमयातनासे मुक्तिमें स्वरूपतः असाधन ही कहा जायेगा और उसे भी उसका साधन बना देना श्रीयमुनाके कर्मकी अति अद्भुतता है।

यम-यातनासे तो (अजामिल आदिकी तरह) भगवन्नाम-ग्रहणद्वारा भी मुक्ति मिल सकती है, फिर यमुनाके चरित्रमें ऐसी कौन-सी विशेषता है जिसके कारण उसे अति अद्भुत कहा जा रहा है? इस प्रश्नका उत्तर देते हुए गो० श्रीहरिराय कहते हैं कि यदि नामापराध हो जायें अर्थात् यदि भगवन्नामका ग्रहण या जप करने वाला नामग्रहणके (गुरु-विमुखताका त्याग एवं दुस्सङ्गका त्याग आदि) अङ्गोंकी सिद्धि नहीं कर पाता है तो नामग्रहणरूप अङ्गीकी सिद्धि नहीं होती है और उसे उसका फल नहीं मिलता है; किन्तु श्रीयमुनाके सम्बन्धमें ऐसी कोई बात नहीं है, क्योंकि यहाँ यमुना-जल-पानका यमयातनाभावरूप फल प्राप्त होनेके लिए किसी अङ्गकी सिद्धिकी अपेक्षा नहीं है। इससे उनके चरित्रकी विशेषता स्पष्ट हो जाती है। गोस्वामी श्रीद्वारकेश कहते हैं कि अनन्त-कालसे आवागमनके चक्रमें फँसा, श्रीयमुनाके पुष्टिमार्गीय स्वरूप एवं माहात्म्य से अनभिज्ञ और इस प्रकार साधनरहित तथा भावविरहित, जिह्वोपस्थ-परायण व्यक्ति भी जब केवल पिपासा-शान्तिके लिए भी यमुनाजल-पान कर लेता है तो उसे यम-यातनासे मुक्ति मिल जाती है और उसपर भगवान्का स्नेह हो जाता है। उसमें ऐसी महती योग्यताका सम्पादन कर देनेके लिए श्रीयमुना भावकी भी अपेक्षा नहीं करतीं, यही उनके चरित्रकी अति अद्भुतता है।

पयःपान द्वारा यम-यातनासे मुक्ति मिल जाना लोकमें प्रसिद्ध नहीं है, अतः इसे प्रकारान्तरसे शास्त्र-वचनोंसे सिद्ध करते हुए गो० श्रीपुरुषोत्तमने,

'गण्डूषमात्रमप्यम्बु पीत्वा भवति सोमपाः।
सप्तकृत्वश्च सप्तैव सोमसंस्थाः समाप्नुयात् ॥' तथा

हिन्दी भावार्थ

'विनिग्राह्यास्त्वया भ्रातर्ये नराः पापकारिणः।
तानहं तारयिष्यामि प्राप्स्यामि च सुरालयम् ॥'

ये दो श्लोक उद्धृत किये हैं। उनके अनुसार श्रीयमुना-जलके पानसे यम-यातनासे मुक्तिकी सिद्धि स्वयं यमराजके,

'यमुने कृपया पापानवश्यं तारयिष्यसि।
मयि त्वया दया कार्या निर्दये निगृहीतरि ॥' इत्यादि

तथा श्रीयमुनाके,

'एवमस्तु मदम्भोभिः स्नात्वा त्वामादरान्नराः।
दशभिश्च चतुर्भिश्च तर्पयिष्यन्ति नामभिः ॥
तेन हिंसापरोऽपि त्वं घृतकल्पो भविष्यसि।
निरातङ्का भविष्यन्ति भवतो येऽपि पापिनः ॥' इत्यादि वाक्योंसे

ही हो जाती है और प्रकृत श्लोकमें केवल इसकी उपपत्तिका उल्लेख करते हुए आचार्यचरणने 'यमोऽपि भगिनीसुतान् कथमु हन्ति दुष्टानपि' यह कहा है।

सम्भव है कि श्रीयमुनाके जलका पान करनेपर श्रीयमुनाके अनुरोधके कारण यम किसीको यातना न दें किन्तु वे अन्ततः जिस कार्यके लिए नियुक्त हैं उसका सर्वथा त्याग तो नहीं कर सकते। मध्यम-मार्ग यही हो सकता है कि वे जीवको अल्पदण्ड देकर मुक्त कर दें। इस आशङ्काका समाधान करते हुए गो० श्रीपुरुषोत्तम कहते हैं कि पूर्वोद्धृत श्लोकोंके अनुसार श्रीयमुनाके चौदह नामोंसे तर्पण करनेसे यम (घृतकी तरह) पिघल जाते हैं और हिंसापरक होते हुए भी ('आयुर्वै घृतम्' इत्यादि उक्तिके अनुसार) आयुप्रदाता हो जाते हैं। यमके लिए जीवोंको नरकमें डाल देना ही उनकी हिंसा करना है और उन्हें वहाँसे उबार लेना ही उनको आयु प्रदान करना है। इस प्रकार श्रीयमुनाका पयःपान करनेवाले पापी भी यमके आतङ्कसे मुक्त हो जाते हैं।

'यमोऽपि भगिनीसुतान् कथमु हन्ति दुष्टानपि' इस तृतीय चरणकी व्याख्या करनेके लिए गो० श्रीहरिराय पहले आशङ्काका स्वरूप स्पष्ट करते हैं। वे कहते हैं कि लौकिक पयःपानसे अदृष्टकी उत्पत्ति नहीं होती अर्थात् केवल प्यास बुझानेके लिए किये गये पयःपानसे न तो कोई पुण्य होता है और न पापका नाश ही। लौकिक (अर्थात् केवल पिपासा-शान्तिके लिए किये गये) यमुना-जलपानका यम-यातनासे मुक्तिका साधन होना लोकमें प्रसिद्ध भी नहीं है। इस प्रकार अदृष्ट या दृष्ट किसी भी प्रकारसे लौकिक (अर्थात् पिपासा-निवृत्तिमात्रके लिए किये गये) यमुना-जल-पानसे यम-यातनाकी निवृत्ति सम्भव नहीं है। इस आशङ्काका

हिन्दी भावार्थ

समाधान श्लोकके उक्त तृतीय चरणमें किया गया है। उस समाधानका तात्पर्य अधोलिखित है।

यमराज सूर्यके पुत्र हैं। यमराजके जन्मके बाद सूर्यकी पुत्रीके रूपमें उत्पन्न होनेके कारण श्रीयमुना यमराजकी अनुजा हैं। भगिनी होनेके कारण वे यमराजकी स्नेहभाजन हैं। ऐसी दशामें उनका पयःपान करनेवाले उनके सुत-निर्विशेष जीवों अर्थात् अपने भागिनेयों को—भले ही वे दुष्ट ही क्यों न हों—यमराज कैसे मार सकते हैं? गो० श्रीहरिराय कहते हैं कि इस श्लोकमें प्रयुक्त 'पयः' शब्द श्लिष्टार्थक है और उसका अर्थ 'स्तन्य' तथा 'जल' दोनों है। इन दोनों ही अर्थोंकी दृष्टिसे श्रीयमुनाका पयःपान करनेवाले जीव यमराजके 'भगिनीसुत' हो जाते हैं। पाञ्चभौतिक शरीरकी उत्पत्तिमें अन्य चार महाभूतोंकी अपेक्षा जल-तत्त्वकी प्रमुखता है, यह 'पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्ति' (छान्दो० उप० ५।९।१) इत्यादि वाक्योंसे स्पष्ट है। इस दृष्टिसे भी यमुना-जल-पान करनेवाले यमराजके भगिनी-सुत हैं। ऐसी स्थितिमें भले ही वे सदोष या दुष्ट ही क्यों न हों, यमराज उन्हें—अपना भागिनेय होनेके कारण—प्रिय एवं मान्य ही मानते हैं और उनकी हिंसा करनेकी बात नहीं सोच सकते। गो० श्रीद्वारकेश कहते हैं कि यद्यपि वे (यमुना पयःपान करनेवाले जीव) दुष्ट हो सकते हैं तथापि यमराज भागिनेयोचित सहज स्नेहके कारण एवं (अपनी बहिनकी सन्ततिको कष्ट देनेपर होनेवाले भावी) अपवादके भयसे भी, उनका अपकार नहीं कर सकते। वे अपनी सुगमान्वयबोधिनी व्याख्यामें कहते हैं कि श्रीयमुनाके पयःपानसे जीव अतिशुद्ध हो जाते हैं फलतः यमराज उनका अपकार नहीं प्रत्युत उपकार ही करते हैं।

इस सम्बन्धमें अपने निर्णयार्णव ग्रन्थ (की द्वितीय तरङ्गके पृष्ठ २५) में श्रीबालकृष्ण भट्ट लिखते हैं कि श्रीयमुनाष्टकके इस श्लोकमें 'तुम्हारा पयःपान करनेसे यम-यातना नहीं होती' इस उक्तिकी पुष्टिके लिए श्लिष्ट पयःशब्द—जिसका अर्थ जल एवं दुग्ध दोनों होता है—के प्रयोगके द्वारा श्रीयमुनाजलका पान करनेवालेके श्रीयमुनापुत्र होनेका निरूपण कर, 'यमराज भी अपनी बहिन श्रीयमुनाके पुत्रों (अर्थात् अपने भागिनेयों) को—भले ही वे दुष्ट ही क्यों न हों—पापियोंको दी जानेवाली विविध यातनाएँ कैसे दे सकते हैं' यह युक्ति दी गयी है। ऐसा समझनेवाले किसी व्यक्तिको यह सन्देह हो सकता है कि जिस प्रकार अन्य काव्योंमें मिथ्या और काल्पनिक अर्थोंका निरूपण रहता है (और इसीलिए उनपर श्रीवल्लभाचार्यद्वारा उद्धृत 'काव्यालापांश्च वर्जयेत्' यह उक्ति लागू होती है) उसी प्रकार श्रीवल्लभाचार्यकी इस कृतिमें भी श्लिष्ट 'पयः' शब्दके प्रयोग द्वारा असत् या मिथ्या पुत्रत्वका प्रतिपादन और इस प्रकार काल्पनिक अर्थका निरूपण

हिन्दी भावार्थ

हुआ है और यह भी अन्य साधारण काव्योंकी ही भाँति परम-पुरुषार्थके प्रेप्सुओंको वितथ एवं कल्पित अर्थोंसे सन्तुष्ट करनेके लिए लिखी गयी[1] एक स्तुतिमात्र है।

श्रीबालकृष्ण भट्टके अनुसार ऐसा समझना ठीक नहीं है क्योंकि इस श्लोकमें 'पयःपानतः' पदका तात्पर्य श्लेषके प्रयोगसे श्रीयमुनाके पुत्र होनेका प्रतिपादन करनेमें नहीं प्रत्युत सीधे-सादे ढंगसे यही प्रतिपादित करनेमें है कि श्रीयमुनाजलका पान करनेसे यम-यातना नहीं होती है। श्रीयमुनाजल पान करनेवालोंको यम-यातना नहीं होती है यह तो पद्मपुराण आदिमें स्पष्ट ही कहा गया (अर्थात् शब्दप्रमाणसे सिद्ध) है अतः इस उक्तिकी सिद्धिके लिए 'यमराज भी अपने भागिनेयोंको—भले ही वे दुष्ट ही क्यों न हों—यम-यातनाएँ कैसे दे सकते हैं' इत्यादिरूप युक्ति देनेकी अपेक्षा (और उसके लिए 'पयःपानतः' पद द्वारा श्लेषसे काल्पनिक एवं मिथ्यार्थ-भूत श्रीयमुनापुत्रत्वका निरूपण माननेकी आवश्यकता भी) नहीं है।

निस्सन्देह 'यमोऽपि भगिनीसुतान्' (यमराज भी अपने भागिनेयोंको) इत्यादि पदोंमें जीवोंको श्रीयमुनाका पुत्र और यमका भागिनेय कहा गया है, किन्तु उनके इस श्रीयमुनापुत्रत्वको सिद्ध करनेके लिए 'पयःपानतः' पदमें युक्ति खोजनेकी और उस युक्तिके उपपादनके लिए 'पयःपानतः' पदका श्लिष्टार्थ 'स्तन्यपानसे' माननेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

वस्तुतः श्रीयमुनाको यहाँ शरणागत जीवोंकी रक्षा एवं पोषण करनेके कारण प्रपन्न जीवोंकी माता और उन जीवोंको श्रीयमुनाका पुत्र तथा यमराजका भागिनेय कहा गया है। श्रीयमुना प्रपन्न जीवोंकी रक्षा करती हैं यह पद्मपुराणके 'शरणागत-सन्त्राणनिपुणा सगुणागुणा' इत्यादि वाक्योंमें भी कहा गया है। धर्मशास्त्रोंमें रक्षाको मातृत्वका हेतु बताया गया है। स्वयं श्रीभगवान्ने श्रीमद्भागवतमें 'स पिता सा च जननी यौ पुष्णीतां स्वपुत्रवत्' (भागवत १०।४५।२२) कहकर पुत्रके समान रक्षण-पोषण करनेको मातृत्वका सूचक बताया है। इस प्रकार श्रीबालकृष्ण भट्टके अनुसार प्रपन्न जीवोंकी रक्षा करनेसे श्रीयमुनाका मातृत्व एवं उन जीवोंका श्रीयमुना-पुत्रत्व तथा यम-भागिनेयत्व उपपन्न है और श्रीयमुनाष्टकको अन्य साधारण काव्योंकी तरह काल्पनिक एवं मिथ्या अर्थोंका प्रतिपादक समझना उचित नहीं है।

---

[1] येषः वाग्भिरिव तोषयति नूनं शब्दैः पुनर्धाविनो
वाल्मीकिः कविराज एव विबुधैरर्थैर्मुहुः कल्पितैः।
(श्रीमाधवाचार्यकृतशङ्करदिग्विजय ६।१८)।

हिन्दी भावार्थ

पुरुषार्थके दुःखनिवृत्ति एवं आनन्दोपलब्धि दो रूप हैं। जीवोंके दोषोंका निराकरण करने एवं (केवल पिपासा-शान्तिके लिए भी पयःपान करनेपर भी) यम-यातनाओंका अभाव सम्पादन कर देनेके श्रीयमुनाके दुःख-निवृत्ति-कारक अद्भुत चरित्रका उपपादन करनेके बाद अब श्लोकके चतुर्थ चरणमें श्रीयमुनाके, नित्य एवं निरवधि आनन्दकी उपलब्धिरूप पुरुषार्थके साधक, भगवत्प्रियत्वरूप अत्युत्कृष्ट फलके सम्पादक अद्भुत चरित्रका निरूपण किया जा रहा है।

श्रीयमुनाकी सेवा करनेसे व्यक्ति श्रीहरिका प्रिय हो जाता है। भगवान् जिन्हें स्वीयत्वेन अङ्गीकार कर लेते हैं उनकी (भगवदुक्त भक्ति-ज्ञान-कर्मादि साधनोंसे) भगवान्में प्रीति सिद्ध हो जाती है अर्थात् वे भगवान्से सुदृढ सर्वतोऽधिक स्नेह करने लगते हैं यह तो भगवच्छास्त्रोंसे प्रमाणित होता है किन्तु निर्दोष-पूर्ण-गुण-विग्रह भगवान् स्वयं अविद्यादि-दोषोंसे ग्रस्त जीवसे प्रेम करने लगें यह अत्यन्त विचित्र है क्योंकि निर्दोष व्यक्तिकी सदोष व्यक्तिमें प्रीति लोकप्रसिद्ध नहीं है। श्रीयमुना पुष्टिमार्गीया हैं और जीव जब उनकी सेवा करते हैं एवं चित्तको सर्वभावेन उनके अधीन कर देते हैं तो वे उनके अपने बन जाते हैं। सर्वदुःखहर्ता भगवान् श्रीहरि उनसे स्वसम्बन्धि-सम्बन्धसे (अर्थात् यह सोचकर कि ये श्रीयमुनाके आश्रित और स्वीय हैं) स्वयं स्नेह करने लगते हैं। यह श्रीयमुनाके चरित्रकी एक अन्य अद्भुतता है।

इसका उदाहरण देते हुए महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य श्रीगोपीजनोंका उल्लेख करते हैं, 'जिस प्रकार गोपियाँ आपकी सेवा करके भगवान् श्रीहरिकी परम-प्रीति-पात्र बन गयी थीं।' श्रीमद्भागवतमें व्रतचर्या प्रकरणके,

आप्लुत्याम्भसि कालिन्द्या जलान्ते चोदितेऽरुणे। (भाग० १०।२२।२) एवं
कृष्णमुच्चैर्जगुर्यान्त्यः कालिन्द्यां स्नातुमन्वहम् ॥ (भाग० १०।२२।६)

इत्यादि वाक्योंसे द्योतित होता है कि गोपकुमारियोंको भगवत्प्राप्ति और 'मयेमा रंस्यथ क्षपाः' (भाग० १०।२२।२७) इत्यादि वाक्यसे सूचित फलकी प्राप्ति श्रीयमुनाके सेवनसे ही हुई थी। वहीं अन्यत्र यह भी बताया गया है कि भगवान्के अन्तर्हित हो जानेपर उनकी लीलाओंका अनुकरण करनेवाली गोपियाँ जब श्रीयमुनाके तटपर आयीं और भगवद्भावसे भावित होकर भगवान्का गान करने लगीं[1] तभी उन्हें परमानन्दरूप नन्दनन्दनके दर्शन[2] और उनकी प्रीति की प्राप्ति हो सकी।

---

[1] पुनः पुलिनमागत्य कालिन्द्याः कृष्णभावनाः।
समवेता जगुः कृष्णं तदागमनकाङ्क्षिताः ॥ (भाग० १०।३०।४५)।

[2] तद्दर्शनाह्लाद-विधूत-हृद्रुजो मनोरथान्तं श्रुतयो यथा ययुः। (भाग० १०।३२।१३)।

हिन्दी भावार्थ

यहाँ बहुवचनान्त 'गोपिकाः' पदसे चारों यूथोंकी गोपियों एवं स्वामिनियों का ग्रहण अभिप्रेत है।

वस्तुतः उदाहरणीय भगवत्प्रियता तो गोपीजनोंकी ही है। भगवद्भक्त तो अनेक हुए हैं किन्तु भगवत्प्रिय भक्तोंकी चर्चाका प्रसङ्ग आनेपर स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने भी अपनी प्रगाढ़ प्रीतिका उल्लेख गोपीजनोंको लेकर ही किया है। अतः भगवत्प्रीतिपात्र होनेका दृष्टान्त देते हुए श्रीमहाप्रभु कहते हैं कि जिस प्रकार गोपियाँ भगवान्की सर्वभावसे प्रीतिपात्र बनी थीं उसी प्रकार श्रीयमुनाके सेवक भक्त भी उनके सर्वभावसे प्रीतिपात्र बन जाते हैं।

इस प्रकार श्रीमहाप्रभुने इस श्लोकमें यह बताया है कि श्रीयमुनाका सेवन करनेसे भक्तमें भगवत्प्रियत्वरूप उत्कर्ष आ जाता है। इसीलिए इस श्लोकको गो० श्रीहरिराय एवं गो० श्रीद्वारकेश ने श्रीयमुनाके 'भगवदीयोत्कर्षाधायकत्व-रूप' तथा गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमने 'भगवत्प्रियत्व-सम्पादकत्व-रूप' छठे ऐश्वर्यका प्रतिपादक बताया है।

इस श्लोककी गो० श्रीविट्ठलनाथकृत विवृति-व्याख्याकी अपनी विवृतिका उपसंहार करते हुए गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमने 'एतावदन्तं व्याख्यानं प्रभूणाम्, अग्रे तदात्मज-श्रीगोकुलनाथानाम्।' यह वाक्य लिखकर सूचित किया है कि इस श्लोकतककी विवृति गो० श्रीविट्ठलनाथने स्वयं लिखी है और इसके बादका अंश उनकी आज्ञासे उनके चतुर्थ पुत्र गो० श्रीगोकुलनाथने लिखकर पूरा किया है। भाषा-शैली की दृष्टिसे दोनों अंशोंमें जो भिन्नता पायी जाती है उसका भी यही कारण है। विवृतिके अन्तमें गो० श्रीविट्ठलनाथका नाम ही उपलब्ध होता है, सम्भव है कि गो० श्रीविट्ठलनाथने इस विवृतिको पूरा करनेकी आज्ञा देनेके साथ ही गो० श्रीगोकुलनाथको शेष श्लोकोंका स्वाभिप्रेत अर्थ भी बताया हो अथवा अपने पूज्य पिताके निरन्तर सान्निध्यमें रहनेवाले गो० श्रीगोकुलनाथने स्वयं ही उनका हार्द समझकर व्याख्या पूरी की हो ॥ ६ ॥

●

ममास्तु तव सन्निधौ तनु-नवत्वमेतावता ;
न दुर्लभतमा रतिर्मुररिपौ मुकुन्द - प्रिये !
अतोऽस्तु तव लालना सुरधुनी परं सङ्गमात् ;
तवैव भुवि कीर्तिता न तु कदापि पुष्टिस्थितैः ॥ ७ ॥

हिन्दी श्लोकान्वयार्थ

मुकुन्दप्रिये !	हे भगवान् मुकुन्दकी प्रिया श्रीयमुने !
तव सन्निधौ	तुम्हारे समीप (अर्थात् तुम्हारे आधिभौतिक एवं आधिदैविक स्वरूपकी सन्निधिमें)
मम	मेरा
तनुनवत्वम् अस्तु	देह-नवीनीकरण हो (अर्थात् मेरी देह नवीनताको प्राप्त हो, भगवल्लीलोपयोगिनी बने)
एतावता	क्योंकि ऐसा (अर्थात् तनुनवत्वका सम्पादन) हो जाने से
मुररिपौ	मुरारि भगवान् श्रीकृष्णमें
रतिः	परम-प्रीति (की सिद्धि)
न दुर्लभतमा	दुर्लभतम नहीं रह जाती (अर्थात् सुलभ हो जाती है)।
अतः	इसलिए लीलोपयोगी तनुनवत्वकी प्राप्ति न होनेतक
तव लालना अस्तु	तुम्हारी (गुण-सङ्कीर्तनरूप यह) लालना (अर्थात् मेरे द्वारा प्रकट किया जा रहा यह स्नेहोद्गार ही स्तुतिरूपमें तुम्हें स्वीकार) हो।
सुरधुनी	देवताओंकी नदी गङ्गा
भुवि परं कीर्तिता	इस पृथ्वीपर अत्यधिक कीर्तित हुई है
(परं)	(किन्तु उसका यह गुण-सङ्कीर्तन)
तव सङ्गमाद् एव	तुम्हारा गङ्गाके साथ जो सङ्गम हुआ है उसके कारण ही हुआ है
(अन्यथा) तु	अन्यथा (अर्थात् तुम्हारे सङ्गमसे रहित केवल गङ्गाका गुण-सङ्कीर्तन) नहीं हुआ है।
	यदि कहीं केवल गङ्गाकी स्तुति की भी गयी है तो यह आपके स्वरूपसे अनभिज्ञ मर्यादामार्गीयोंके ही द्वारा।

हिन्दी श्लोकान्वयार्थ

पुष्टिस्थितैः	(आपके स्वरूपसे अभिज्ञ) पुष्टिमार्गनिष्ठ भक्तोंके द्वारा (केवल गङ्गा)
कदापि न कीर्तिता	कभी भी स्तुत या सङ्कीर्तित नहीं हुई है।

[अतः परं श्रीमत्प्रभुचरणात्मज-श्रीगोकुलनाथचरणविरचिता विवृतिः।]

आवश्यक-दैहिकधर्मेऽपि त्वत्सम्बन्धे मुक्त्यधिक-भक्तिप्राप्तिः यत्र, तत्र का शङ्का यमयातनाभावे इत्याहुः, **ममास्तु** इति।

तव सन्निधौ तनोः नवत्वम् लीलोपयोगि-नूतन-देह-सम्पत्तिः **अस्तु**। एतेन पूर्व-देह-निवृत्तिः सूचिता। इदम् अपि त्वत्कृतम् एव भवति, न तु अन्यथा, इति ज्ञापनाय प्रार्थनम् **अस्तु** इति।

एतावता शरीर-परिवर्त-मात्रेण एव **मुररिपौ रतिः दुर्लभतमा न** भवति इत्यर्थः, किन्तु तनु-नवत्वेन सुलभा एव। कदाचित् प्रतिबन्धके विद्यमानेऽपि यथा जलदोष-रूपमुरस्य निवारकः तथा त्वत्सम्बन्धात् सर्वदोषनिवारकत्वं मुररिपुपदेन उक्तम्।

अतः कारणाद् यावदाधुनिक-शरीर-निवृत्तिः तावत् **तव लालना** स्तुतिरूपा **अस्तु**। सापि त्वत्कृपया एव न अन्यथा इति प्रार्थ्यते, **अस्तु** इति।

हिन्दी विवृत्यर्थ

हे मुकुन्दप्रिये ! जहाँ आवश्यक दैहिक धर्मके भी आपसे सम्बन्धित हो जानेपर व्यक्तिको मुक्तिसे भी अधिक महान् भक्तिकी प्राप्ति हो जाती है वहाँ इस बातमें तो सन्देहका अवकाश ही कहाँ है कि उसे यमयातना नहीं होगी। इसे स्पष्ट करते हुए श्रीमहाप्रभु कहते हैं 'ममास्तु' इत्यादि: अर्थात् हे श्रीयमुने ! तुम्हारे समीप मेरे तनु या शरीर का नवत्व सम्पादित हो अर्थात् मुझे भगवल्लीलोपयोगी नूतन-देह-सम्पत्ति प्राप्त हो। इस कथनसे पूर्वदेहकी निवृत्ति सूचित की गयी है। किन्तु यह पूर्व-देह-निवृत्ति और तनु नवत्व आपके करनेपर ही होता है अन्यथा नहीं, यह ज्ञापित करनेके लिए, आचार्यचरण प्रार्थना करते हैं कि 'आपकी सन्निधिमें मेरा तनुनवत्व हो।' ऐसा हो जाने अर्थात् शरीर-परिवर्तन हो जाने मात्रसे मुररिपु भगवान् श्रीकृष्णमें परम प्रीति दुर्लभतम नहीं रह जाती है। तात्पर्य यह है कि तनुनवत्व हो जाने मात्रसे भगवान्में परम-प्रीति सुलभ हो जाती है। यहाँ भगवान् श्रीकृष्णके लिए 'मुररिपु' पदके प्रयोग-द्वारा आचार्यचरणने यह सङ्केतित किया है कि कदाचित् प्रतिबन्धकके रहनेपर भी भगवान् आपके सम्बन्धके कारण सभी दोषोंका निवारण उसी प्रकार कर देंगे जिस प्रकार उन्होंने जल-दोषरूप मुरका निवारण किया था। अतः जब तक इस विद्यमान शरीरकी निवृत्ति न हो जावे तब तक आपकी यह स्तुतिरूपा लालना हो। यह स्तुतिरूपा

गङ्गाया अपि फलसाधकत्वं त्वत्सम्बन्धाद् एव इत्यत आहुः, **सुरधुनी तव सङ्गमात्, परम्** अत्यर्थं, **भुवि कीर्तिता** स्तुता इत्यर्थः। **न तु कदापि** त्वद्रहिता अपि इत्यर्थः।

ननु क्वचित् पुराणादौ केवलाया अपि स्तुतिः दृश्यते इति स्तुतौ विशेषम् आहुः, **पुष्टिस्थितैः** इति। मर्यादा-मार्गीयैः केवला अपि स्तूयते त्वत्स्वरूपाज्ञानात्। पुष्टिमार्गीयाः तु त्वत्स्वरूपं जानन्ति इति त्वत्सम्बन्धाद् एव स्तुवन्ति इत्याहुः, **पुष्टिस्थितैः** इति ॥ ७ ॥

हिन्दी विवृत्यर्थ

लालना भी आपकी कृपा होनेपर ही की जा सकती है अन्यथा नहीं, इसलिए यहाँ प्रार्थना की जा रही है कि 'आपकी स्तुतिरूपा लालना हो।'

गङ्गामें फल देनेकी जो साधकता है वह अर्थात् गङ्गाका फलदान-सामर्थ्य भी आपके सम्बन्धके कारण ही है यह स्पष्ट करते हुए आचार्यचरण कहते हैं कि सुरधुनी अर्थात् देवताओंकी नदी गङ्गाकी तुम्हारे सङ्गमके कारण पृथ्वीपर अत्यधिक स्तुति हुई है, किन्तु तुम्हारे सङ्गमसे रहित केवल गङ्गाकी स्तुति नहीं हुई है। पुराणादिमें कहीं-कहीं यमुना-सङ्गम-रहित केवल गङ्गाकी स्तुति भी उपलब्ध होती है, इस आशङ्काका अपनोदन करते हुए श्रीमहाप्रभु स्तुतिकी विशेषता बताते हुए कहते हैं कि पुष्टिस्थित भक्तोंके द्वारा केवल गङ्गाकी स्तुति कभी नहीं की गयी है। मर्यादामार्गीय भक्तोंको आपके (श्रीयमुनाके) स्वरूपका समुचित ज्ञान नहीं है इसलिए उन्होंने केवल गङ्गाकी भी स्तुति की है, किन्तु पुष्टिमार्गीय भक्त तो आपके स्वरूपको भली-भाँति जानते हैं अतः वे गङ्गाका स्तवन आपके सम्बन्धके कारण (अर्थात् आपका गङ्गासे सङ्गम होनेके कारण) ही करते हैं। इसी भावको स्पष्ट करनेके लिए आचार्यचरणने मूलश्लोकमें 'पुष्टिस्थितैः' पदका निवेश किया है ॥ ७ ॥

हिन्दी भावार्थ

पूर्वश्लोकमें अपनी (श्रीयमुनाकी) सेवा करनेवालोंके भगवत्प्रियत्वरूप उत्कर्षका सम्पादन करनेवाली श्रीयमुनाके अति अद्भुत चरित्रकी स्तुतिके अशक्य होनेका निरूपण करनेके बाद अब इस सातवें श्लोकमें भगवत्सेवोपयोगी देहका सम्पादन करानेवाली श्रीयमुनाकी स्तुतिके अशक्य होनेका निरूपण किया जा रहा है।

गो० श्रीपुरुषोत्तमके अनुसार पूर्वश्लोकके वर्णनसे श्रीयमुनाके भगवत्प्रियत्व-सम्पादकत्व-रूप स्वरूप-सामर्थ्यका निश्चय हो जानेके बाद अब इस सातवें श्लोकमें भगवत्प्रियत्वमें उपयोगीके रूपमें अभिप्रेत तनुनवत्वकी प्रार्थना की जा रही है। इस

हिन्दी भावार्थ

तनुनवत्व अर्थात् भगवल्लीलोपयोगी देह का सम्पादन करा सकनेकी सामर्थ्य श्रीयमुनामें ही है और इस श्लोकमें उनके इसी सातवें ऐश्वर्यका प्रतिपादन किया गया है।

जहाँ आवश्यक दैहिक धर्मोंके भी श्रीयमुनासे सम्बन्धित हो जानेपर व्यक्तिको मुक्तिसे भी अधिक महान् भक्तिकी प्राप्ति हो जाती है वहाँ इस बातमें तो सन्देहका अवकाश ही कहाँ है कि उसे यमयातना नहीं होती। विवृतिके इस वाक्यमें उल्लिखित 'आवश्यक-दैहिक-धर्म' का तात्पर्य गोस्वामी श्रीहरिराय और गो० श्रीपुरुषोत्तम ने अलग-अलग बताया है।

पिपासादि देहधर्मोंसे प्रयुक्त श्रीयमुना-पयःपान और उसके फलका उल्लेख पूर्व-श्लोकमें हो चुका है। सम्भवतः इसीलिए गो० श्रीहरिरायने इस श्लोककी अपनी टिप्पणीमें 'आवश्यक-दैहिक-धर्म' पदका अर्थ श्रीयमुनाके जलका पान आदि नहीं किया है।

गो० श्रीहरिराय तथा गो० श्रीद्वारकेश के अनुसार देहका देहान्तरारम्भकत्व (अर्थात् एक देहसे देहान्तरकी प्राप्ति) एक आवश्यक या अपरिहार्य दैहिक धर्म है। इस कथनकी सिद्धि 'प्रज्ञया शरीरं समारुह्य' (कौषीतक्युप० ३।५) एवं 'देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः' (भाग० १०।१।३९) आदि वाक्योंसे होती है। मुक्तिकी स्थितिमें भी वैकुण्ठादिमें सेवोपयोगी देहान्तरकी प्राप्ति होती है ऐसा भगवच्छास्त्रमें बताया गया है। इसीलिए आचार्यचरणने अपने सेवाफलविवरणमें कहा है कि सेवाके फलस्वरूप वैकुण्ठादिमें सेवोपयोगी देहान्तरकी प्राप्ति होती है। इस पूर्वोक्त दैहिक-धर्मका भी श्रीयमुनासे दैशिक सम्बन्ध हो जानेपर जब मुक्तिसे भी अधिक महान् भक्तिकी सिद्धि हो जाती है तो यमयातनाके न होनेमें क्या सन्देह है?

मूल श्लोकके 'तव सन्निधौ' (अर्थात् तुम्हारी सन्निधिमें) इन पदोंका अर्थ स्पष्ट करते हुए गो० श्रीहरिराय कहते हैं कि तनुनवत्व वहीं होता है जहाँ श्रीयमुना अपने आधिदैविक स्वरूपसे सन्निहित हों और दुष्ट-सन्निधानके कारण तिरोहित न हो गयी हों[1]।

गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमके अनुसार यद्यपि श्रीयमुनाके सेवन और पयःपान के फलका उपपादन पूर्ववर्ती श्लोकोंमें हो चुका है तथापि वह केवल मूल श्लोकोंमें ही हुआ है विवृतिमें नहीं, अतः यहाँ विवृतिकारने व्याख्यानमुखसे उसका अनुवाद किया है। उनके अनुसार 'आवश्यक दैहिक धर्म'से यहाँ विवृतिकारका तात्पर्य है श्रीयमुनाका तीरवासात्मक सेवन और श्रीयमुनाजलका (फलबुद्धिसे

---

[1] गङ्गादितीर्थवर्येषु दुष्टैरेवावृतेष्विह।
तिरोहिताधिदैवेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥ (श्रीकृष्णाश्रयस्तोत्रम् २)।

हिन्दी भावार्थ

नहीं प्रत्युत आवश्यक दैहिक धर्मके रूपमें किया गया) पान। इस पूर्वोक्त आवश्यक दैहिक धर्मका भी श्रीयमुनासे सम्बन्ध होनेपर जब मुक्तिसे भी महान् फलरूप भक्तिकी प्राप्ति होती है तो यम-यातनाके न होनेमें सन्देह ही क्या है! इसी आशयसे यहाँ प्रार्थना की गयी है कि श्रीयमुनाके आधिदैविक रूपकी सन्निधिमें भौतिक रूपके मध्यमें सन्निधानसे मेरा तनुनवत्व (अर्थात् सिद्धिरूप लीलोपयोगी नूतन देहकी प्राप्ति) हो।

अवधेय है कि उक्त 'तनुनवत्व'की गो० श्रीपुरुषोत्तमकी अवधारणा गो० श्रीहरिराय (एवं गो० श्रीद्वारकेश) की अवधारणासे किञ्चिद् भिन्न है। इस सन्दर्भमें गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तम गो० श्रीहरिरायके मतका उल्लेख करते हुए कहते हैं 'तदपि पूर्वकथाविश्रान्तम् इति न विरोधः।'

गो० श्रीहरिरायके अनुसार विवृतिकारने मूलश्लोकके 'तनुनवत्व' पदकी 'तनोर्नवत्वं' (अर्थात् इसी शरीरकी नूतनता) कहकर जो व्याख्या की है उससे स्पष्ट है कि यहाँ इसी शरीरके नवत्वकी प्रार्थना की गयी है, नूतन शरीरान्तरकी नहीं (अन्यथा मूल श्लोकमें 'तनु-नवत्व'के स्थानपर 'नव-तनुत्व' पद होता)।

'तनुनवत्व'के स्वरूपका विशद विवरण करनेवाले विवृतिके 'एतेन पूर्वदेह-निवृत्तिः सूचिता' इस वाक्यका अर्थ भी गो० श्रीहरिराय तथा गो० श्रीपुरुषोत्तम ने अलग-अलग किया है।

गो० श्रीहरिरायके अनुसार विवृतिके उपर्युक्त वाक्यमें 'निवृत्ति' पदका अर्थ पूर्वदेहका नाश नहीं प्रत्युत लौकिक धर्मोंके लोपपूर्वक अलौकिक धर्मोंका आविर्भाव है। यदि ऐसा न होता तो विवृतिकारने पूर्वतनुके नवत्वकी बात (तनोर्नवत्वम्) न कही होती। गो० श्रीहरिरायकी व्याख्याको स्पष्ट और पुष्ट करते हुए अन्वयबोधिनीमें गो० श्रीद्वारकेश कहते हैं कि 'निवृत्ति' पद प्रकृत प्रसङ्गमें 'नितरां वर्तनम्' इस व्युत्पत्तिसे सत्ता या विलक्षणरूपमें स्थिति का ही बोधक है, नाश का नहीं। यदि ऐसा न होता तो यहाँ 'तनु-नवत्व'के स्थानपर 'नव-तनुत्व'की प्रार्थना की गयी होती। इस प्रकार प्रकृत प्रसङ्गमें अभिप्रेत 'तनु-नवत्व'में पूर्वशरीरका नाश नहीं होता प्रत्युत उसकी सत्ता रहती है, किन्तु उसमेंसे लीलानुपयोगित्वरूप लौकिकत्वकी निवृत्ति हो जाती है और उसमें लीलोपयोगित्वरूप अलौकिकत्वका उदय हो जाता है।

'पूर्वदेहनिवृत्ति'में निवृत्तिका क्या स्वरूप है इसे गोस्वामी श्रीहरिराय एवं गोस्वामी श्रीद्वारकेशने विशद रूपसे समझाया है। उनके अनुसार मिट्टीके घड़ेमें कच्चा होनेकी स्थितिमें जल आदि धारण करनेका सामर्थ्य नहीं होता किन्तु आगमें पका दिये जानेपर

हिन्दी भावार्थ

उसमेंसे कच्चापन निवृत्त हो जाता है और उसमें पक्वत्वगुणरूप अतिशयके आधानसे जलादिको धारण करनेका सामर्थ्य आ जाता है। दोनों स्थितियोंमें घट वही है किन्तु द्वितीय स्थितिमें उसमें मृत्त्वनिवृत्तिपूर्वक पक्वत्वगुणके आधानसे जलादिधारणरूप एक विशिष्ट सामर्थ्य आ जाता है जिसका प्रथम स्थितिमें अभाव था। इसी प्रकार श्रीयमुनाकी सन्निधिसे देहकी प्राकृतता, लौकिकता, सेवानुपयोगिता अर्थात् सेवामें साक्षात् भगवान्के दर्शन-स्पर्शनकी अयोग्यता निवृत्त हो जाती है और उसमें ऐसी भगवल्लीलाके दर्शन एवं अनुभव की योग्यता या सामर्थ्य आ जाती है जिसमें भगवान् बिना किसी आवरणके विराजमान हों। इस प्रकार 'तनुनवत्व'का अर्थ है इसी शरीरमें (श्रीयमुनाकी कृपासे जन्य अतिशयाधानसे) धर्मान्तरता या एक विलक्षण योग्यता का आविर्भाव। गो० श्रीहरिरायके हार्दको स्पष्ट करते हुए गो० श्रीद्वारकेश कहते हैं कि श्रीमद्भागवतके,

पश्यन्ति ते मे रुचिरावतंस-प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनानि।
रूपाणि दिव्यानि वरप्रदानि साकं वाचं स्पृहणीयां वदन्ति॥ (भाग० ३।२५।३५)

इस पद्यमें भक्तोंको भगवान्का जिस प्रकारका दर्शन आदि प्राप्त होनेका निरूपण किया गया है उस प्रकारका दर्शन आदि जिस प्रकारके शरीरसे हो सके वही 'तनुनवत्व' पदसे अभिप्रेत है। इस 'नवत्व'का वैशिष्ट्य यही है कि इसके प्राप्त हो जानेपर सेव्य स्वरूपका किसी भी आवरणसे अनाच्छन्न रूपमें दर्शनादि होता है जब कि इस साधारण प्राकृत देहसे की जानेवाली सेवामें सेव्यस्वरूप सावरण रूपमें विराजमान रहते हैं। इस प्रकार जबतक लौकिकत्वरूप पूर्वदेहकी निवृत्ति नहीं होती तबतक जीव भगवान्की आवरणमुक्त प्रत्यक्षलीलाका दर्शन नहीं कर सकता, किन्तु श्रीयमुनाकी सन्निधिसे उक्त लौकिकत्वादिरूप पूर्वदेहकी निवृत्ति तथा तनुनवत्वकी प्राप्ति हो जानेपर वह भगवान्के विविध दिव्य स्वरूपोंका साक्षाद् रूपसे दर्शन करता है और उनके साथ सम्भाषण भी करता है।

यहाँ यह आशङ्का नहीं करनी चाहिए कि लौकिकत्वकी निवृत्तिके साथ लौकिक देहकी निवृत्ति भी हो जायेगी क्योंकि लौकिकत्व पारिभाषिक या लौकिक देहके दोषोंका वाचक भी हो सकता है। इस सम्बन्धमें कविरत्न श्रीरणछोड़ कलाधर भट्ट श्रीयमुनाष्टकम्की अपनी 'श्रीगोविन्दतोषिणी' व्याख्यामें (पृष्ठ ४० पर) लिखते हैं, "वस्तुतः देखा जाये

---

१. भक्तानां...फलावस्थामाह। ते मे रूपाणि पश्यन्ति। निरन्तरं भगवत्साक्षात्कारो भवति। ...रूपाणि इति। परमोपासकानाम् एकं रूपं कदाचित् साक्षात्कारं भवति, तेषां तु बहूनि। ...जीवन्त एवैते एतस्मिन्नेव लोके भगवता सह स्पृहणीयां वाचं वदन्ति, यथा मित्रैः सह सल्लापाः क्रियन्ते। (भाग० सुबो० ३।२५।३५)।

हिन्दी भावार्थ

तो जीवगत अविद्याकी निवृत्ति ही 'तनुनवत्व' कहलाती है। देहाध्यास, इन्द्रियाध्यास, प्राणाध्यास, अन्तःकरणाध्यास आदि अध्यासजन्य दोषोंकी उपरतिके अनन्तर ही गोपोंको लीलानुभूति हुई। ये दोष ही देहके नियत धर्म हैं। देहके साथ ही रहनेवाले धर्म नियत धर्म कहलाते हैं। यहाँ गोपोंकी देहके ये दोषरूप नियत-धर्म निवृत्त हो चुके थे, तथापि देहका नाश नहीं हुआ था। गोपोंके देह रहे किन्तु अविद्याजन्य दोष नष्ट हो गये। यहाँ 'तनुनवत्व'से यही अभिप्राय है।"

'तनुनवत्व' पदकी इससे भिन्न प्रकारसे व्याख्या करते हुए गो० श्रीपुरुषोत्तम कहते हैं कि 'तनुनवत्व'का पर्यवसान शरीरमें अतिशयाधान-मात्रमें नहीं है। यह कहना ठीक नहीं है कि जिस प्रकार यज्ञोपवीत संस्कारसे द्विजके शरीरमें अतिशयाधान होता है, उसमें एक विलक्षण योग्यता आ जाती है, उसी प्रकारकी एक विलक्षण योग्यताका आ जाना ही यहाँ शरीरका नवत्व कहा गया है। विवृतिकारने 'तनुनवत्व'का अर्थ 'लीलोपयोगी नूतन देहकी सम्पत्ति अर्थात् प्राप्ति' किया है। उनके अनुसार इससे यह सूचित होता है कि 'तनुनवत्व' पूर्वदेहकी निवृत्तिपूर्वक अभीष्ट लीलोपयोगी देहान्तरकी प्राप्ति ही है। विवृतिकारद्वारा 'तनुनवत्व'का अर्थ 'लीलोपयोगी नूतन देहकी प्राप्ति' किये जानेसे अर्थबलसे वर्तमान शरीरकी निवृत्ति स्वतः सूचित हो जाती है अर्थात् इस शरीरकी सर्वथा निवृत्तिके बाद ही नूतन शरीरकी प्राप्ति हो सकती है। इस श्लोकमें इसी शरीरकी नूतनताकी सिद्धिकी एकात्मिका प्रार्थना की जा रही है यह न मानकर गो० श्रीपुरुषोत्तम यह माननेका आग्रह क्यों करते हैं कि यहाँ पूर्वदेहकी निवृत्ति एवं अभीष्ट नूतन देहान्तरकी प्राप्ति की द्वित्वात्मिका प्रार्थना की जा रही है? इस प्रश्नका उत्तर देनेकी दृष्टिसे विवृतिके 'एतावता शरीर-परिवर्त्त-मात्रेण एव मुररिपौ रतिः दुर्लभतमा न भवति' इस वाक्यकी व्याख्या करते हुए गो० श्रीपुरुषोत्तम कहते हैं कि इसी शरीरकी नूतनता या अलौकिक-धर्म-सम्पन्नता से यद्यपि दोषनिवर्तक भगवान् श्रीकृष्णमें रति दुर्लभतम नहीं रह जाती तथापि यदि भक्तको भगवल्लीलानुभवकी आकाङ्क्षा हो तो वह लीलानुभव तो दुर्लभ रहेगा ही। इस प्रकार गो० श्रीपुरुषोत्तमके मतसे यहाँ इसी देहकी नूतनताके लिए नहीं प्रत्युत पूर्वदेह-निवृत्ति-पूर्वक नूतन देहकी प्राप्तिके लिए प्रार्थना की गयी है।

विवृतिके उपर्युक्त 'एतावता...मुररिपौ रतिः दुर्लभतमा न भवति' इत्यादि वाक्यकी व्याख्या करते हुए अन्वयबोधिनीकार कहते हैं कि हीन एवं मध्यम अधिकारियोंको भी उत्तमाधिकारियोंके लिए उपयुक्त अलौकिक-सामर्थ्यरूप फलका सम्पादन करानेवाली श्रीयमुनाकी कृपा ही दुर्लभ है, उसके प्राप्त हो जानेपर कुछ भी दुर्लभतम

हिन्दी भावार्थ

नहीं रह जाता। श्रीमुरारिमें परम-प्रेम ही दुर्लभतम माना जाता है किन्तु श्रीयमुनाकी कृपा हो जानेपर वह भी सुलभ हो जाता है और दुर्लभतम नहीं रह जाता।

कभी-कभी भगवद्विषयक परम-प्रेमकी प्राप्तिमें विविध अन्तराय आ जाते हैं। वे विघ्न साधारण हों तो दूर हो जाते हैं, किन्तु कुछ ऐसे प्रतिबन्धक भी हैं जो अप्रतीकार्य हैं। उदाहरणतया यदि प्रारब्ध-दोष-वश किसीसे भगवदीयोंके प्रति कोई अपराध हो गया तो उससे भगवत्कर्तृक प्रतिबन्ध उत्पन्न हो सकता है और भगवत्प्रेमके इस प्रतिबन्धकका कोई प्रतीकार न होगा। ऐसी दशामें इस कथनका क्या स्वारस्य होगा कि भगवान् कृष्णमें परम-प्रेम दुर्लभतम नहीं रह जाता (न दुर्लभतमा रतिर्मुररिपौ)? इस शङ्काका निराकरण विवृतिकारने मूल-श्लोकके 'मुररिपौ' पदकी व्याख्या करते हुए किया है, जिसे गो० श्रीहरिराय और गो० श्रीद्वारकेश ने अधोलिखित प्रकारसे स्पष्ट किया है।

यदि कभी किसीसे भगवदीयोंके प्रति कोई अपराध हो जावे और उसके कारण भगवद्भक्तिकी प्राप्तिमें कोई भगवत्कर्तृक प्रतिबन्ध उपस्थित हो जावे तो भी उसे निराश या उद्विग्न नहीं होना चाहिए क्योंकि भगवान् मुररिपु अर्थात् नरकासुर द्वारा निरुद्ध राजकन्याओंपर अनुग्रह करनेके लिए उनकी स्वप्राप्ति (भगवत्प्राप्ति) में प्रतिबन्धक, जलदोषरूप मुरके विनाशक हैं और जिस प्रकार उन्होंने उक्त राजकन्याओंके सम्बन्धके कारण जलके दोषरूप मुरका विनाश किया उसी प्रकार श्रीयमुनाके सम्बन्धके कारण वे उनके सभी सेवकोंके सभी दोषों (तथा तज्जन्य भक्तिप्राप्तिके अन्तरायों) का भी निवारण कर देंगे। इस प्रकार श्रीयमुनाके सेवकोंको भगवत्प्रेमकी प्राप्तिके प्रतिबन्धकोंका निराकरण करनेका प्रयत्न करनेकी भी आवश्यकता नहीं है। भगवान् श्रीयमुनाके सम्बन्धसे उनके सेवकोंके कायिक, वाचिक, मानसिक, कालजन्य या देशावस्थान्तरकृत, भूत, वर्तमान एवं भावी सभी दोषोंका निवारण कर उन्हें अङ्गीकार कर लेंगे। अतः यह कथन उचित ही है कि श्रीयमुनाकी कृपा होनेपर भगवान्में परम-प्रेमकी प्राप्ति भी दुर्लभतम नहीं रह जाती (न दुर्लभतमा रतिर्मुररिपौ)।

श्रीयमुनाकी कृपासे उनके सेवकोंके भगवत्प्रेम एवं भगवत्प्राप्ति के प्रतिबन्धक (भले ही वे भगवत्कृत ही क्यों न हों) दूर हो जाते हैं, इसका अनुमापक या सूचक क्या है? इस आशङ्काका निराकरण करनेके लिए मूलश्लोकमें 'मुकुन्दप्रिये' इस सम्बोधन-पदका सन्निवेश कर 'मुररिपौ' पदके उपर्युक्त अर्थका समाधान किया गया है। इस पदका तात्पर्य गो० श्रीहरिराय एवं गो० श्रीद्वारकेश ने अधोलिखित प्रकारसे स्पष्ट किया है।

हिन्दी भावार्थ

भगवान् मुकुन्द मोक्षदाता हैं[1] और यह मोक्ष, जैसा कि 'विष्णोरनुचरत्वं हि मोक्षमाहुर्मनीषिणः' (पद्मपु०) एवं 'भगवदीयत्वेनैव परिसमाप्तसर्वार्थाः' (भाग० ५।६।१७) इत्यादि वाक्योंसे स्पष्ट है भगवत्प्रेम, भगवत्सेवा और भगवदीयत्वप्राप्ति रूप ही है। भगवान् मुकुन्दकी प्रिया होनेके कारण श्रीयमुना भी उनके ही समान शील एवं लक्षण वाली और इसीलिए मोक्षदानसमर्थ हैं। अतः इनकी कृपासे भगवत्प्रेमके प्रतिबन्धक दूर हो जायें तो क्या आश्चर्य? वस्तुतः आश्चर्य तो तब होगा यदि इनकी कृपा होनेपर भी अन्तराय दूर न हों क्योंकि तब इनके मुकुन्दप्रियात्वपर आँच आयेगी।

'मुकुन्दप्रिये' इस सम्बोधन-पदकी व्याख्या करते हुए गो० श्रीद्वारकेश श्रीयमुनाके सेवनसे भगवत्प्रीतिके प्रतिबन्धकोंके दूर हो जानेका एक अन्य प्रकार बताते हुए कहते हैं कि भगवदीयोंके प्रति अपराध हो जानेसे जन्य भगवत्प्रीति-प्रतिबन्धककी निवृत्तिके लिए उसके कारणभूत भक्तविषयक अपराधकी निवृत्ति अपेक्षित है। भक्तके प्रति किये गये अपराधसे मुक्ति उस भक्तकी सेवा करके उसे प्रसन्न करनेसे ही हो सकती है, अन्यथा नहीं। इस 'यतोऽपराधस्तत एव मुक्तिः' के नियमकी पुष्टि अम्बरीषोपाख्यानके स्वयं श्रीभगवान्‌द्वारा दुर्वासासे कहे गये इन वाक्योंसे होती है,

उपायं कथयिष्यामि तव विप्र ! शृणुष्व तत् ।
अयं ह्यात्माभिचारस्ते यतस्तं यातु वै भवान् ॥ (भाग० ९।४।६९) ।
ब्रह्मंस्तद्गच्छ भद्रं ते नाभागतनयं नृपम् ।
क्षमापय महाभागं ततः शान्तिर्भविष्यति ॥ (भाग० ९।४।७१) ।

श्रीयमुना सर्वभक्त-शिरोमणि हैं। जैसे वृक्षकी मूलका सिंचन करनेसे उसकी शाखाओं आदिका भी सिंचन हो जाता है उसी प्रकार सर्वभक्तशिरोमणि श्रीयमुनाके प्रसन्न हो जानेपर सभी भक्त प्रसन्न हो जायेंगे और फलतः उन भक्तोंके प्रति किये गये अपराधोंकी निवृत्ति तथा उसके परिणामस्वरूप तज्जन्य भगवत्प्रीति-प्रतिबन्धककी निवृत्ति हो जायेगी। इस प्रकार श्रीवल्लभाचार्यने भगवत्कृत भगवत्प्रीति-प्रतिबन्धकोंके अपनयनके जिस प्रकारका प्रतिपादन अपनी विवेकधैर्याश्रय एवं सेवाफल नामक कृतियोंमें किया है उसीका सङ्केत यहाँ 'मुकुन्दप्रिये' इस सम्बोधन-पदसे किया है।

'मुकुन्दप्रिये' पदकी व्याख्या करते हुए गो० श्रीहरिराय लिखते हैं कि भगवान् मुकुन्द अर्थात् मोक्षदाता हैं। वे भक्तोंके उद्धारार्थ स्वयं आविर्भूत होकर उन्हें उनके घरमें ही सारी पुष्टिमार्गीय पुरुषार्थोंका भावके द्वारा अनुभव करा कर स्वतन्त्र-भक्तिके दानद्वारा उनमें भगवदीयत्वका सम्पादन कर देते हैं। ऐसे भगवान् मुकुन्दकी

---

[1] मुकुं (=मोक्षं) ददाति इति मुकुन्दः।

हिन्दी भावार्थ

प्रिया होनेके कारण श्रीयमुना भी उनके उक्त धर्मसे युक्त अर्थात् स्वतन्त्र-भक्तिका दान करनेवाली हैं। इस तरह यहाँ 'मुकुन्दप्रिये' पदके द्वारा श्रीयमुनाके स्वतन्त्र-भक्तिदायिका होनेके परमोत्कर्षका सूचन किया गया है।

गो० श्रीपुरुषोत्तमके अनुसार विवृतिकार गो० श्रीगोकुलनाथके मूलश्लोकके 'मुकुन्दप्रिये' इस सम्बोधन-पदकी व्याख्या विवृतिमें न करनेका कारण यह है कि इस पदके घटक 'प्रिया' शब्दसे यह आशय स्फुटरूपसे स्फुरित हो जाता है कि मुकुन्द होनेके कारण मोक्ष[1] देना तो भगवान् श्रीकृष्णका स्वभाव ही है; किन्तु श्रीयमुना उनकी प्रिया हैं अतः उनके अनुरोधसे वे उनके कृपापात्र सेवकोंको अलौकिक (सेवोपयोगी) देहका (तनु-नवत्वका) दान अवश्य करेंगे।

आप भगवान् मुकुन्दकी प्रिया तथा तनु-नवत्व एवं मुकुन्द-प्रियत्व की सम्पादिका हैं। आपसे किसी भी तरह सम्बन्ध हो जानेपर सब कुछ सुलभ हो जाता है। प्रतिबन्ध-निवृत्ति-पूर्वक भगवद्भक्ति-प्राप्ति भी दुर्लभ नहीं रहती। इसलिए आपसे यह प्रार्थना है कि जब तक हमारे इस अलौकिक-सामर्थ्य-शून्य आधुनिक शरीरकी लौकिकताकी निवृत्ति नहीं हो जाती (और तनु-नवत्व नहीं सम्पादित हो जाता) तब तक हम उसकी प्राप्तिके लिए आपका यह गुण-कीर्तन कर सकें। यह स्तुति-रूप गुण-कीर्तन कर सकना आपकी कृपा होनेपर ही सम्भव है अन्यथा नहीं, इसीलिए आपसे प्रार्थना है कि हमारे ऊपर ऐसी कृपा करें जिससे हम तनुनवत्व-प्राप्ति होने तक आपकी स्तुति-रूपा लालना कर सकें (और तनुनवत्व सम्पादित हो जाने पर, नवीन अलौकिक शरीर की प्राप्ति हो जाने पर आपके तटपर लीलारसका अनुभव कर सकें)।

विवृतिमें 'लालना' को 'स्तुतिरूपा' कहा गया है, इसका आशय स्पष्ट करते हुए गो० श्रीहरिराय कहते हैं कि माताएँ बच्चोंको प्यार करते समय प्रेमवश उनकी प्रशंसा या उनका गुणगान करती रहती हैं, उनकी यह प्रशंसा भी दुलारके अन्तर्गत आनेके कारण गुण-कीर्तन न होकर दुलार या लालना ही है। इस प्रकार लालना वास्तविक माहात्म्य-निरूपण, गुणकीर्तन और स्तुति से भिन्न भी होती है। प्रकृत श्लोकमें 'लालना' पदका अर्थ उस प्रकारकी लालना नहीं, प्रत्युत वास्तविक माहात्म्य-निरूपण एवं गुणकीर्तन है यह स्पष्ट करनेके लिए ही श्रीमत्प्रभुचरणने अपनी विवृतिमें लालनाको स्तुतिरूपा ,कहा है।

'स्रोतसामस्मि जाह्नवी' (गीता १०।३१) इत्यादि वाक्योंमें गङ्गाको भगवद्विभूति-रूप कहा गया है। अनेक स्थलोंपर गङ्गा-स्नान करने या गङ्गाजल पान करने से अश्वमेध-

---

[1] यहाँ 'मोक्ष' शब्दसे केवल पुष्टिमार्गीय-मोक्षसे भिन्न मोक्ष ही अभिप्रेत है।

हिन्दी भावार्थ

राजसूयादि यज्ञोंको करनेसे मिलनेवाले फलके प्राप्त होनेकी बात कही गयी है जो गङ्गाके विभूति-रूपके अनुरूप ही है । किन्तु,

सितासिते सरिते यत्र सङ्गते, तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति ।
ये वै तन्वां विसृजन्ति धीराः ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते ॥ (ऋग्वेद-खिलसूक्त)

इत्यादि श्रुतिवाक्योंसे गङ्गासे भी तनुनवत्वरूप फलकी प्राप्ति हो सकनेका ज्ञान होता है । इस सम्बन्धमें अवधेय है कि स्वतन्त्रतया गङ्गा जो फल देती हैं, वह भजनानन्दाभिलाषी पुष्टिमार्गीय भक्तोंका अभिलषित फल नहीं है, और अलौकिकदेहसिद्धिपूर्वक साक्षात्-पुरुषोत्तम-लीला-सम्बन्धरूप पुष्टिमार्गीय फल गङ्गा स्वतन्त्रतया नहीं प्रत्युत श्रीयमुनाके सम्बन्धके कारण ही देती हैं । इसीलिए यहाँ श्रुतिरूपी गोपी होनेके कारण पुष्टिमार्गीय कही गयी ऋचामें श्रीयमुनासे सङ्गत गङ्गाको परम-फलदात्री कहा गया है ।

पुष्टिमार्गियोंमें मूर्धन्य व्रजभक्तोंने केवल गङ्गाका गुण-कीर्तन कभी किया हो ऐसा उल्लेख श्रीमद्भागवत में नहीं मिलता । इससे स्पष्ट है कि श्रीयमुनाके स्वरूपसे अभिज्ञ व्रजभक्त पुष्टिमार्गीय फलकी प्राप्ति श्रीयमुनासे या उनसे सङ्गत होनेके कारण श्रीयमुना-सङ्गत गङ्गासे ही मानते हैं, केवल गङ्गासे नहीं ।

गो॰ श्रीद्वारकेशके अनुसार पुराणादिमें,

'गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे । सर्वत्र दुर्लभा गङ्गा'

इत्यादि वचनोंमें श्रीयमुनाके सम्मिलनसे पूर्व (हरिद्वार-कनखल आदिमें) भी अर्थात् केवल गङ्गाकी भी मुक्तिदात्रीके रूपमें स्तुति मिलती है, किन्तु इसे केवल गङ्गाकी स्तुति श्रीयमुनाके स्वरूपसे अनभिज्ञ मर्यादामार्गीय ही समझते हैं । जिन्हें भगवत्कृपासे श्रीकृष्ण और श्रीयमुना के स्वरूपका यथार्थ ज्ञान हो जाता है उन पुष्टिमार्गीय भक्तोंको यह समझमें आ जाता है कि केवल गङ्गाकी यह स्तुति भी गङ्गाके श्रीयमुनासे सम्बन्धके कारण ही है ।

इस सप्तम श्लोकमें श्रीयमुनाके गो॰ श्रीपुरुषोत्तमके अनुसार तनुनवत्व एवं गो॰ श्रीद्वारकेशके अनुसार भगवत्प्रियत्वके सम्पादनके सामर्थ्यरूप सप्तम ऐश्वर्यका निरूपण हुआ है ॥७॥

◆

स्तुतिं तव करोति कः कमलजा-सपत्नि ! प्रिये !
हरेर्यदनुसेवया भवति सौख्यमामोक्षतः ।
इयं तव कथाऽधिका सकल-गोपिका-सङ्गम-
स्मर-श्रम-जलाणुभिः सकल-गात्रजैः सङ्गमः ॥ ८ ॥

हिन्दी श्लोकान्वयार्थ

कमलजा-सपत्नि !	हे लक्ष्मीके समान सौभाग्यशालिनी (उनकी सपत्नी) एवं
प्रिये !	भगवान् श्रीकृष्णकी प्रिया श्रीयमुने !
तव स्तुति	आपकी स्तुति
कः करोति	कौन कर सकता है !
यत्	क्योंकि
हरेः अनु	भगवान् श्रीहरिके साथ अथवा श्रीहरिकी सेवाके पश्चात् की गयी
सेवया	श्रीलक्ष्मीकी सेवासे
आमोक्षतः	मोक्ष-पर्यन्त (अर्थात् जिसकी सीमा मोक्ष है ऐसा)
सौख्यं भवति	सुख (ही) प्राप्त होता है ।
तव इयं	किन्तु आपकी यह (अर्थात् श्लोकके शेषांशमें विवक्षित)
कथा अधिका	कथा (लक्ष्मीकी अपेक्षा) अधिक अर्थात् उत्कृष्ट या श्रेष्ठ है क्योंकि
सकल-गोपिका-सङ्गम-	सारी गोपिकाओंके साथ विविध प्रकारके सङ्गमसे होनेवाले
स्मर-श्रम-जलाणुभिः	स्मर-श्रमसे जन्य प्रस्वेदरूप जलबिन्दुओं
सकल-गात्रजैः	—जो भगवान्के सारे अवयवोंसे प्रस्रवित हो रहे हैं—से
सङ्गमः	आपका सङ्गम अर्थात् सम्बन्ध है (और आपकी सेवा करनेवाले भक्तोंका भी भगवान्के इन प्रस्वेद-बिन्दुरूप रस-बिन्दुओंसे सङ्गम अर्थात् सम्बन्ध हो जाता है तथा उन्हें मोक्षकी अपेक्षा अत्युत्कृष्ट भगवद्रसकी उपलब्धि हो जाती है)।

यत्र त्वत्सम्बन्धात् सर्वजन्य-गङ्गास्तुतिः तत्र त्वत्स्तुतौ को वा समर्थ इत्याहुः, **स्तुतिं तव** इति । अशक्य-स्तुतित्वे हेतुम् आहुः, **कमलजा-सपत्नि !** इति । सर्वत्र स्तुत्यत्वं भगवत्सम्बन्धात् । स सर्वत्र लक्ष्म्यपेक्षया न्यून एव । त्वं तु तस्या अपि

सपत्नी तत्समान-सौभाग्यवती । ननु लक्ष्मी-स्तुतिस्तु लोके दृश्यते । तर्हि तत्साम्यं चेत् कथं स्तुतिः अशक्या इत्याहुः, **प्रिये !** इति । साम्यमात्रे कर्तुं शक्यत एव, अत्र तु ततोऽपि अधिकं प्रियत्वम् अस्ति इति स्तुतिकरणम् अशक्यम् ।

ननु कथं ज्ञायते लक्ष्म्यपेक्षया आधिक्यम् अस्ति इति ? तत्र हेतुम् आहुः, **हरेर्यदनुसेवया** इति । हरेः अनु पश्चाद् यस्याः सेवया मोक्षं मर्यादीकृत्य सुखं भवति;

हिन्दी विवृत्यर्थ

सभीके लिए वन्दनीया गङ्गाकी स्तुति भी जिन श्रीयमुनाके सम्बन्धके कारण ही है उन श्रीयमुनाकी स्तुति कर सकनेमें कौन समर्थ हो सकता है अर्थात् उनकी स्तुति कोई कहाँ तक कर सकता है ? इसीलिए महाप्रभु कहते हैं कि हे यमुने ! आपकी स्तुति कौन कर सकता है ?

श्रीयमुनाकी स्तुति कर सकना क्यों सम्भव नहीं है इसका सङ्केत 'कमलजा-सपत्नि' और 'प्रिये' इन दो सम्बोधनान्त पदों द्वारा किया गया है ।

स्तुतिकी योग्यता सर्वत्र भगवान्‌के सम्बन्धसे ही आती है अर्थात् स्तुति-योग्यताका नियामक भगवत्सम्बन्ध ही है । और वह भगवत्सम्बन्ध सभीमें लक्ष्मीकी अपेक्षा न्यून ही है अर्थात् भगवान्‌के सम्बन्धमें जितना लक्ष्मी रहती हैं उसकी अपेक्षा अन्य सभी लोग कम ही रहते हैं ।

श्रीयमुना उन लक्ष्मीकी भी सपत्नी अर्थात् उन लक्ष्मीके समान ही सौभाग्यशालिनी हैं । लक्ष्मीकी स्तुति लोकमें देखी जाती है । यदि श्रीयमुना भी लक्ष्मीके समान ही हों तो उनकी स्तुति भी उसी प्रकार हो सकनी चाहिए जिस प्रकार लक्ष्मीकी स्तुति होती है । फिर यहाँ श्रीयमुनाको लक्ष्मीके समान सौभाग्यवती बताते हुए भी उनकी (श्रीयमुनाकी) स्तुतिको अशक्य क्यों कहा जा रहा है, इस आशङ्काका उत्तर 'प्रिये' इस सम्बोधनान्त पदसे मिल जाता है । इसे स्पष्ट करते हुए श्रीविट्ठलनाथ कहते हैं कि यदि श्रीयमुना केवल लक्ष्मीके समान ही होतीं तो लक्ष्मीके ही समान उनकी स्तुति कर सकना भी सम्भव हो सकता था किन्तु वे तो भगवान्‌को लक्ष्मीसे भी अधिक प्रिय हैं और इस प्रकार लक्ष्मीके समान ही नहीं अपितु उनसे भी बढ़कर हैं । अतः जिस प्रकार लक्ष्मीकी स्तुति लोकमें की जाती देखी जाती है उसी प्रकार इनकी स्तुति कर सकना सम्भव नहीं है अर्थात् श्रीयमुनाकी स्तुति कर सकना अशक्य है ।

श्रीयमुनाकी स्तुतिको अशक्य इसलिए कहा जा रहा है कि वे लक्ष्मीकी अपेक्षा अधिक अर्थात् उनसे भी बढ़कर हैं । किन्तु यह कैसे जाना जाता है अर्थात् श्रीयमुनाके लक्ष्मीकी अपेक्षा आधिक्यका निश्चयात्मक ज्ञान कैसे होता है, इस जिज्ञासाका समाधान करते हुए मूल श्लोकमें द्वितीय चरणमें श्रीयमुनाके आधिक्यका हेतु बताते हुए लक्ष्मीके

मोक्षप्राप्तिः भवति इत्यर्थः । न तु ततोऽपि अधिकं भजनानन्दाख्यं सुखं भवति । तदपि भगवत्सहित-तद्भजनेन न तु केवलायाः, केवलायाः मोक्ष-विघातकत्वात् । अनु-शब्दात् मुख्यतया भगवद्भजनम्, तदनुगुणत्वेन लक्ष्म्याः ।

कालिन्द्युत्कर्षम्[१] आहुः, **इयं तव कथा** इति । इयम् अग्रतः उच्यमाना **तव कथा** अपि सर्वमुक्त्यपेक्षया **अधिका** । अत एव एतत्कथा-रसिकानां न मोक्षेच्छा-गन्धोऽपि । तदेव उक्तं पञ्चमस्कन्धे[२], '**अथ ह वा व तव महिमामृत-समुद्र-विप्रुषा**

हिन्दी विवृत्यर्थ

दानसामर्थ्यका उल्लेख किया गया है । इसे स्पष्ट करते हुए विवृतिमें कहा गया है कि (यद्यपि केवल लक्ष्मीकी सेवा मोक्षविघातक है तथापि) यदि भगवान्‌को मुख्य मानकर उनकी सहचरीके रूपमें भगवत्सेवाके बाद उनकी सेवा की जाये तो उस सेवाके फलके रूपमें वह सुख मिलता है जिसकी मर्यादा या सीमा मोक्ष है । इस प्रकार भगवत्स्वामिनीके रूपमें लक्ष्मीकी सेवा करनेपर मोक्ष-सुखकी प्राप्ति होती है । इस प्रकार लक्ष्मीकी सेवासे मिलने वाले सुखकी सीमा मोक्ष है । उस मोक्ष-सुखकी अपेक्षा भी अधिक और उत्तम सुख—जिसे भजनानन्द कहा गया है—की प्राप्ति लक्ष्मीकी सेवासे नहीं हो पाती । और मोक्ष-सुखकी प्राप्ति भी भगवान्‌के साथ उनकी सहचरीके रूपमें लक्ष्मीकी सेवासे ही होती है, केवल लक्ष्मीकी सेवासे नहीं, क्योंकि केवल लक्ष्मी (की सेवा मोक्षदायक नहीं प्रत्युत) मोक्ष-विघातक ही है । मूल श्लोकके 'हरेः अनु यत्सेवया' इत्यादि वाक्यमें भगवत्सेवाके बाद उनकी सहचरी लक्ष्मीकी मोक्षदायक सेवाका उल्लेख करते हुए 'अनु' शब्दके द्वारा यह सूचित किया गया है कि उक्त मोक्षफलक सेवामें भी प्रधानता तो भगवत्सेवाकी ही है । उसके अनुगुण या अङ्ग रूपमें (आनुषङ्गिक रूपमें) भगवत्सहचरी लक्ष्मीकी सेवा करनेसे मोक्षपर्यन्त सुखकी प्राप्ति होती है ।

इस प्रकार लक्ष्मीके दानसामर्थ्यका उल्लेख करनेके बाद अब शेष श्लोकमें श्रीयमुनाके लक्ष्मीकी अपेक्षा उत्कर्षाधिक्यका निरूपण किया जा रहा है जिससे यह स्पष्ट हो सके कि लक्ष्मीकी स्तुति कर सकना सम्भव होते हुए भी श्रीयमुनाकी स्तुति कर सकना क्यों अशक्य है । श्रीयमुनाके उत्कर्षका निरूपण करते हुए श्रीमहाप्रभु कहते हैं कि इस श्लोकके अन्तिम अंशमें विवक्षित श्रीयमुनाकी कथा भी सालोक्य-सामीप्य-सारूप्यादि सभी प्रकारकी मुक्तियोंकी अपेक्षा अधिक अर्थात् श्रेष्ठ है । अत एव श्रीयमुनाकी इस कथाके रसिक जीवोंको मोक्ष-प्राप्तिकी इच्छाकी गन्ध भी नहीं सुहाती । श्रीमद्भागवतके छठे स्कन्धमें देवगण भगवान् कृष्णकी स्तुति करते हुए कहते हैं, 'हे

---

१. यह टिप्पणानुसारी पाठ है । विवृति-विवृत्यनुसारी पाठ '**कालिन्द्याम् उत्कर्षम्**' है ।
२. यही पाठ सभी प्रतियोंमें मिलता है । इसे वस्तुतः '**षष्ठ-स्कन्धे**' होना चाहिए ।

सकृल्लीढया विस्मारित-दृष्ट-श्रुत-सुखलेशाभासाः परमभागवता एकान्तिनः'[1] (भाग० ६।९।३९) इति।

सा का इत्याकाङ्क्षायाम् आहुः, सकलगोपिका इति। सकल-गोपिका-सङ्गमेन स्मर-सम्बन्धी यः श्रमः, तेन जनिता ये स्वेद-जलाणवः सकलगात्रजाः, तैः सङ्गमो यस्याः। एते[2] जलाणवः न श्रम-स्वेदरूपाः किन्तु विविध-सङ्गम-रसस्य सर्वावयव-पूर्णस्य अत्युच्छलनेन बहिः आगतस्य एव बिन्दवः, न तु केवल-जल-मात्रस्य। अत एव उक्तं, सकल-गात्रजैः इति।

एभिर्विशेषणैः परमकाष्ठापन्न-पुष्टिपुष्टिमार्गान्तरङ्गभक्तत्वं सर्वदा एतद्रसपूर्णत्वम्

हिन्दी विवृत्यर्थ

भगवन्! आपकी महिमा अमृतके समुद्रके समान है। इस समुद्रकी एक नन्हीं-सी बूँदका भी जिसने एकबार भी स्वाद चख लिया (उसके हृदयमें परमानन्दकी अखण्ड धारा प्रवाहित होने लगती है जिसके कारण) उसे लोकमें लेशमात्र और प्रतीतिमात्र जिन प्रत्यक्ष एवं श्रुत सुखोंकी अनुभूति हुई रहती है वे सब सुख भूल जाते हैं। वे परम-भागवत एकान्तभक्त (अपने मनको निरन्तर आपमें ही लगाये रखते हैं और आपके चिन्तनका ही सुख लूटते रहते हैं)।' (भाग० ६।९।३९)। जिस प्रकार भगवत्कथा-रसका पान कर चुके व्यक्तिको मोक्ष-सुखकी भी इच्छा नहीं रहती उसी प्रकार श्रीयमुनाकी अग्र-लिखित कथाके रसके रसिक जीवोंको भी मोक्ष-सुखकी भी प्राप्तिकी इच्छा नहीं रहती।

श्रीयमुनाकी वह कथा क्या है इस जिज्ञासाका समाधान करते हुए मूलश्लोकमें 'सकल-गोपिका-सङ्गम-स्मर-श्रम-जलाणुभिः' इत्यादि पदों द्वारा उसका निरूपण किया गया है। तात्पर्य यह है कि सारी गोपाङ्गनाओंके सङ्गमसे होने वाले स्मर-सम्बन्धी श्रमसे उत्पन्न सम्पूर्ण भगवद्विग्रहसे प्रस्रवित होनेवाले स्वेद-बिन्दुओंके साथ श्रीयमुनाका सङ्गम हुआ है। वस्तुतः वे जल-बिन्दु श्रमजन्य स्वेदरूप नहीं हैं। वे तो भगवद्विग्रहके सारे अवयवोंमें व्याप्त विविध-सङ्गम-रसके अति उद्रेकसे उच्छलित होकर बाहर आ गये बिन्दु हैं, न कि केवल श्रम-जल-मात्रके बिन्दु। इसीलिए महाप्रभु इन बिन्दुओंका विशेषण देते हुए कहते हैं, 'सारे शरीर अर्थात् सभी अवयवों से उद्गत होनेवाले।'

श्रीयमुनाकी उक्त कथाके इन विशेषणों द्वारा उनके अन्तरङ्ग निगूढ स्वरूपका

---

[1] मुद्रित श्रीमद्भागवतका पाठ '**अथ ह वाव तव महिमामृत-रस-समुद्र-विप्रुषा सकृद-वलीढया स्वमनसि निष्यन्दमानानवरत-सुखेन विस्मारित-दृष्ट-श्रुत-विषय-सुख-लेशाभासाः परमभागवता एकान्तिनः......**' (भाग० ६।९।३९) है।

[2] अन्वयबोधिनीके अनुसार इस पदका पाठ '**एतेन**' है।

अन्तरङ्ग-भक्तानुगुणत्वम् एतल्लीला-मध्य-पातित्वादिकं सूचितम्। स्वस्य एतद्रस-पूर्णत्वेन केवलैतद्भजनकर्तुः अपि एतद्रसं ददाति इति स्पष्टम् एव वैलक्षण्यम् ॥८॥

हिन्दी विवृत्यर्थ

संसूचन किया गया है कि वे परमकाष्ठापन्न पुष्टि-पुष्टि-मार्गकी अन्तरङ्ग भगवदीया हैं, सर्वदा स्मर-श्रम-जन्य-जल-बिन्दुरूप भगवद्रससे परिपूर्ण रहती हैं, भक्तानुगुण अर्थात् अपने अन्तरङ्ग भक्तोंको भी उक्त भगवद्रसका दान करनेवाली हैं और लीला-मध्य-पातिनी अर्थात् पूर्वोक्त भगवद्रससे अपने सङ्गमके कारण भगवल्लीला-रसकी सहास्वादिनी हैं। श्रीयमुना पूर्वोक्त स्मर-श्रम-जन्य जल-बिन्दु-रूप भगवद्रससे परिपूर्ण हैं अतः वे अपने अनन्य भक्तोंको भी इस रसका दान करती हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि उनमें यह महान् वैलक्षण्य है (जो लक्ष्मीमें नहीं मिलता और इस प्रकार वे लक्ष्मीसे भी अधिक उत्कर्ष-शालिनी हैं इसीलिए उनकी स्तुति दुःशक है) ॥८॥

हिन्दी भावार्थ

इस श्लोककी विवृतिके प्रारम्भमें पूर्वपक्षीकी आशङ्काका उपन्यास करते हुए गो० श्रीपुरुषोत्तम कहते हैं कि गङ्गाकी अपेक्षा श्रीयमुनाका सम्बन्ध भगवान् श्रीहरिसे अधिक है और स्तुतियोग्यताका निर्धारण सर्वत्र भगवत्सम्बन्धाधिक्यसे ही होता है अतः श्रीयमुनाको गङ्गाकी अपेक्षा अधिक स्तुतियोग्य तो माना जा सकता है किन्तु श्रीलक्ष्मीकी अपेक्षा अधिक स्तुतियोग्य नहीं। ऐसी स्थितिमें तनुनवत्वकी प्राप्तिके लिए श्रीलक्ष्मीकी ही स्तुति की जानी चाहिए, श्रीयमुनाकी नहीं। और श्रीमहाप्रभुने,

'तया सदृशतामियात् कमलजा सपत्नीव यत्।
हरिप्रिय-कलिन्दया मनसि मे सदा स्थीयताम्॥' (श्रीय० ५)

एवं गोस्वामी श्रीविठ्ठलनाथने 'तत्रापि भवती प्रिया' (श्रीयमुनाष्टक-विवृति ५) कहकर श्रीयमुनाकी जिस अतिप्रियताका उल्लेख किया है उसका अनुमान भी श्रीयमुनाके भगवद्भक्तोंके कलिदोषका निवारण करनेवाली होनेके आधारपर नहीं किया जा सकता क्योंकि भगवद्भक्तोंके कलिदोषका अपनयन करनेका धर्म श्रीयमुनाका वैशिष्ट्य नहीं प्रत्युत एक साधारण धर्म है जो अन्य गुणातीत भगवद्भक्तोंमें भी उपलब्ध हो सकता है। अतः इस आधारपर भी श्रीयमुनाको श्रीलक्ष्मीसे अधिक स्तुतियोग्य नहीं माना जा सकता। इस सम्बन्धमें यह अवधेय है कि गङ्गाकी जीवोपकारकता श्रीलक्ष्मीकी जीवोपकारकताकी अपेक्षा अधिक है यह तो सुप्रसिद्ध ही है। जब उन गङ्गाकी स्तुति भी श्रीयमुनाके उनसे सङ्गमके कारण ही की जाती है और इस प्रकार उनसे श्रीयमुनाको अधिक उत्कर्षशालिनी माना जाता है तो उन गङ्गाकी अपेक्षा कम उत्कर्षशाली श्रीलक्ष्मीकी अपेक्षा श्रीयमुनाका अधिक उत्कर्षशाली होना कैमुतिक न्यायसे सुतरां स्पष्ट

हिन्दी भावार्थ

है। अतः यह कहना ठीक न होगा कि श्रीयमुनासे जिस तनुनवत्वकी प्राप्तिकी प्रार्थना की जा रही है उसकी उपलब्धि श्रीलक्ष्मीकी स्तुति करनेसे भी हो सकती है। इसी आशयको स्पष्ट करनेके लिए इस श्लोकमें श्रीलक्ष्मीकी अपेक्षा श्रीयमुनाके अधिक उत्कर्षशाली होनेका तथा उनकी स्तुतिके अशक्य होनेका उपपादन किया गया है। इस प्रकार इस श्लोकमें, 'ममास्तु तव सन्निधौ तनुनवत्वम्' (श्लो० ७) इत्यादि शब्दोंद्वारा प्रार्थित तनुनवत्वके स्वरूपका निरूपण करते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि जीवको इस तनुनवत्वका दान श्रीयमुना ही कर सकती हैं (श्रीलक्ष्मी नहीं) और उनका यह गुण या सामर्थ्य ही उनके उत्कर्षको (श्रीलक्ष्मीकी अपेक्षा अधिक और) असीम बना देता है। इसीलिए इस श्लोकमें गोस्वामी श्रीहरिराय एवं गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तम ने क्रमशः श्रीयमुनाके तनुनवत्व-साधकत्व एवं लीला-सामयिक-प्रभु-श्रम-जल-कण-सम्बन्ध-सम्पादकत्व रूप अष्टम ऐश्वर्यका निरूपण हुआ माना है।

श्रीमहाप्रभु कहते हैं कि हे श्रीयमुने! आपकी महिमा अपार है और आपका स्वरूप दुर्ज्ञेय। आपकी स्तुति अशक्य है। जो जिसके स्वरूप और माहात्म्य को जानता है वही उसकी स्तुति कर सकता है। आपके अद्भुत और अगम्य माहात्म्यको तथा दुर्बोध्य स्वरूपको कौन जान सकता है और कौन आपकी स्तुति कर सकता है? तात्पर्य यह है कि आपका उत्कर्ष वर्णन कर सकनेमें कोई समर्थ नहीं है।

श्रीयमुनाकी स्तुति क्यों नहीं की जा सकती इसका सङ्केत करते हुए श्रीमहाप्रभु कहते हैं कि वे लक्ष्मीकी सपत्नी हैं। लोक एवं वेद में सर्वत्र स्तुतियोग्य उसे ही माना गया है जो भगवान्से सम्बद्ध हो। जिसका भगवान्से जितना अधिक निकट सम्बन्ध रहता है उसे उतना ही अधिक स्तुतियोग्य समझा जाता है। ब्रह्मासे लेकर स्थावर-पर्यन्त चराचर पदार्थोंकी अपेक्षा भगवान्से लक्ष्मीका घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि वे तो सर्वदा उनके वक्षस्थलसे ही आश्लिष्ट रहती हैं। गोपीजनोंने भी भगवान्के घनिष्ठ सम्बन्धमें रहकर भगवल्लीलाओंके सुखकी अनुभूति की है किन्तु केवल भगवान्के ब्रजवास कालमें ही। भगवान् द्वारा कालान्तरमें अन्यत्र की गयी लीलाओंके समय गोपियोंको भगवान्के निकट सम्बन्धका सुख नहीं प्रत्युत विरहका दुःख ही प्राप्त हो सकता है किन्तु लक्ष्मी तो क्रीडासे अवकाशके समय भी श्रीनिवासके घनिष्ठ सम्बन्धकी सुखानुभूति करती रहती हैं। इस प्रकार भगवान्से अपने निकट सम्बन्धके कारण लक्ष्मी अन्य सभीकी अपेक्षा अधिक उत्कर्षशालिनी एवं स्तुतियोग्य हैं। वे भगवान्की सभी पत्नियोंमें प्रमुख एवं स्वतन्त्र सौभाग्यशालिनी हैं। अन्य पत्नियाँ उनकी अंशरूपा होनेसे उनके अधीन हैं।

हिन्दी भावार्थ

श्रीयमुना भी लक्ष्मीकी ही भाँति भगवान्की स्वतन्त्र सौभाग्यवती पत्नी हैं क्योंकि वे न तो लक्ष्मीकी अंश ही हैं और न लक्ष्मीके अधीन ही। वे भगवान्से स्वतन्त्रतया सम्बद्ध हैं। व्रजमें चतुर्थ प्रियाके रूपमें और द्वारकामें चतुर्थ महिषीके रूपमें भगवान्के घनिष्ठ सम्बन्धमें रहकर वे संयोग-सुखका अनुभव करती रहती हैं।

इस प्रकार श्रीयमुना लक्ष्मीकी सपत्नी हैं, जो श्रीयमुनाके भगवत्प्रिय हुए बिना सम्भव नहीं हो सकता। अतः कमलजा-सपत्नि पदसे श्रीयमुनाके भगवत्प्रिय होनेका सङ्केत किया गया है।

श्रीयमुना लक्ष्मीकी सपत्नी हैं और उनका स्वभाव लक्ष्मीके स्वभावसे विपरीत है। उनके स्वभावकी लक्ष्मीके स्वभावसे विरुद्धता या विपरीतता स्पष्ट करते हुए गोस्वामी श्रीहरिराय कहते हैं कि लक्ष्मीका स्वरूप उस ब्रह्मानन्दका है जो प्रमाणास्पद एवं प्रमाणप्रसिद्ध है, अतः प्रमाणभूत वेदादि-वाक्यों द्वारा लक्ष्मीके माहात्म्यका निरूपण सम्भव है किन्तु श्रीयमुना पुष्टिलीलास्थ होनेसे प्रमाणातीत साक्षात् प्रमेयरूप रसात्मक-श्रीहरिस्वरूपमयी हैं। 'रसो वै सः' (तैत्ति० उप० २।७।१) इत्यादि उपनिषद्वाक्योंमें प्रतिपादित रसरूप प्रमेयात्मक श्रीहरिका माहात्म्य एवं स्वरूप मनोवाचामगोचर है। 'वाणी एवं मन उसे ग्रहण कर सकनेमें असमर्थ होकर उसे प्राप्त किये बिना ही लौट आते हैं' (तैत्ति० उप० २।४।१)। श्रीयमुना रसस्वरूपा हैं और उनका माहात्म्य एवं स्वरूप भी मन और वाणी के लिए अगम्य है। लक्ष्मी एवं श्रीयमुना के इस परस्पर-विरोधी स्वभावके कारण इनमें परस्पर सापत्न्यभाव है। इस प्रकार लक्ष्मीसे विरुद्ध स्वभाववाली होनेके कारण श्रीयमुना उनकी सपत्नी हैं। इसीलिए लक्ष्मीकी स्तुतिके शक्य होते हुए भी श्रीयमुनाकी स्तुति अशक्य है यह प्रतिपादित करते हुए श्रीमहाप्रभु कहते हैं कि हे लक्ष्मीकी सपत्नी श्रीयमुने! आपकी स्तुति कर सकनेमें कौन समर्थ हो सकता है? श्रीयमुनाष्टकम्की अपनी श्रीगोविन्द-तोषिणी व्याख्यामें (पृष्ठ ४४ पर) श्रीरणछोड़ क० भट्ट लिखते हैं, "श्रीयमुना स्वरूपतः वह 'रस' रूप है जिसको वाणी अपना विषय नहीं बना सकी, जो मनसे भी अगम्य है...। लक्ष्मी भी आनन्दमय-स्वरूपा हैं, किन्तु यह आनन्दमयता उस ब्रह्मकी है, जो ब्रह्म प्रमाणसे सिद्ध है, 'ब्रह्मानन्दरूपा सा' (सुबो० १०।१२।७६)—इसीलिए लक्ष्मीका माहात्म्य वेदादि शास्त्रोंसे प्रमाणित अतएव सर्वथा ज्ञानका विषय है। श्रीयमुना प्रमाणसे अतीत अतएव साक्षात् प्रमेयरूप श्रीहरिस्वरूपमयी है। श्रीयमुनाका माहात्म्य स्वतःसिद्ध अतः स्वयं प्रमेयरूप साक्षात् है। सिद्धको साधनान्तरसे सिद्ध करना असङ्गत है। यहाँ तक श्रीयमुनाकी महिमाके आधिक्यका प्रतिपादन प्रमेय द्वारा किया गया।"

हिन्दी भावार्थ

यदि लक्ष्मी और श्रीयमुनामें केवल भगवत्पत्नीत्वरूप समानता ही होती तो कथञ्चित् लक्ष्मीकी ही भाँति श्रीयमुनाकी भी स्तुति शक्य हो सकती थी किन्तु श्रीयमुना लक्ष्मीकी अपेक्षा भगवान् श्रीहरिको अधिक प्रिय हैं अतः वे उनसे (लक्ष्मीसे) अधिक उत्कर्षशालिनी हैं और उनकी स्तुति कर सकना शक्य नहीं है, यह सूचित करनेके लिए श्रीमहाप्रभुने मूलश्लोकमें श्रीयमुनाके लिए सम्बोधनान्त 'प्रिये' पदका प्रयोग किया है। गो० श्रीद्वारकेशने इस प्रियत्वका स्वरूप भगवान्‌का श्रीयमुनाके साथ अनवरत अर्थात् अवतार दशा एवं अनवतार दशा दोनों दशाओंमें लीला-सम्बन्ध बताया है। 'कमलजा-सपत्नि'के तुरन्त बाद उपन्यस्त 'प्रिये' यह सम्बोधनान्त पद इस बातको और अधिक स्पष्ट कर देता है कि वे केवल लक्ष्मीके समान भगवान् श्रीहरिकी पत्नी ही नहीं प्रत्युत लक्ष्मीकी अपेक्षा भी भगवान्‌को अधिक प्रिय हैं। उनके भगवत्सम्बन्ध या नैकट्य की सीमा पत्नीत्व तक आकर ही समाप्त नहीं हो जाती प्रत्युत अन्तरङ्गत्व एवं प्रियत्व तक जाती है। इस दृष्टिसे भी श्रीयमुना लक्ष्मीकी अपेक्षा अधिक उत्कर्षशालिनी हैं और इसीलिए लक्ष्मीकी स्तुतिके शक्य होनेके बावजूद उनकी स्तुति कर सकना सम्भव नहीं है।

गो० श्री हरिराय एवं गो० श्री द्वारकेश लक्ष्मीकी अपेक्षा श्रीयमुनाके इस आधिक्य की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि भगवान्‌ने,

'नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना।
श्रियं चात्यन्तिकीं राजन् येषां गतिरहं परा॥' (भाग० ९।४।६४)

इत्यादि कहकर मर्यादामार्गीय भक्तोंको भी लक्ष्मीकी अपेक्षा अधिक प्रिय बताया है तो अनुग्रहमार्गीय सकल-भक्त-शिरोमणि श्रीयमुनाका लक्ष्मीकी अपेक्षा अधिक भगवत्प्रिय होना सुतरां स्पष्ट है। इसे स्पष्ट करते हुए श्रीरणछोड़ कलाधर भट्ट लिखते हैं,

"लक्ष्मी वस्तुतः भगवत्प्रियत्वसे वञ्चित ही रही। भगवान्‌ने स्वयं कहा है कि मेरे साधु-भक्तोंके बिना, मुझे अपनेमें तथा अपनी अत्यन्त निकट लक्ष्मीमें भी कोई रुचि नहीं।

'नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना।
श्रियं चात्यन्तिकीं राजन्! एषां गतिरहं परम्॥'

यहाँ 'भक्तैः'से मर्यादा-मार्गीय भक्तोंका निर्देश किया गया है। अर्थात् लक्ष्मी भगवान्‌के मतमें मर्यादा-भक्तोंसे भी न्यून हैं। जहाँ मर्यादा-मार्गीय भक्तोंके प्रति अपनी प्रियताकी यह घोषणा है तो फिर पुष्टि-पुष्टिस्थ भगवदीया श्रीयमुनाके प्रति प्रियताके प्रसङ्गमें लक्ष्मीका नामोल्लेख भी कहाँ[1] ?"

---

१. श्रीयमुनाष्टकम् : श्रीगोविन्दतोषिणी व्याख्या, पृष्ठ ४४.

हिन्दी भावार्थ

गो० श्रीद्वारकेश कहते हैं कि लक्ष्मीके दो रूप हैं। प्रथम रूपमें वे केवल भगवद्-विभूतिरूपा हैं जिनकी श्रीहरिसे पृथक् स्वतन्त्ररूपसे सेवा की जाती है और जो सेवा करनेपर भक्तको धन-सम्पत्ति आदिका दान करती हैं। द्वितीयरूपमें वे भगवान् श्रीहरिकी सहचारिणी हैं और सेवा करनेपर भक्तको सालोक्यादिका सुख प्रदान करती हैं। उनके इन दोनों रूपोंके उत्कर्षकी अपेक्षा श्रीयमुनाका उत्कर्ष अधिक है।

श्रीहरिसे पृथक् स्वतन्त्ररूपसे लक्ष्मीकी सेवा पुष्टि-मार्गकी दृष्टिसे वाञ्छनीय नहीं है क्योंकि श्रीहरिसे पृथक् केवल लक्ष्मी भगवद्-विभूतिरूपा हैं और वे अपेक्षाकृत गौण फल ही दान कर सकती हैं। श्रीहरिसे पृथक् स्वतन्त्ररूपमें सेवित भगवद्विभूतिरूपा लक्ष्मी अपने सेवकको धन-सम्पत्तिरूप फलका ही दान करती हैं और जैसा कि सुदामाके,

'अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्नुच्चैर्न मां स्मरेत्।
इतिकारुणिको नूनं धनं मेऽभूरि नाददात्॥' (भाग० १०।८१।२०)

अर्थात् "यह दरिद्र, धन पाकर कहीं उन्मत्त न हो जाये और मुझे भूल न जाये, यह सोचकर उन परम-दयालु श्रीकृष्णने मुझे थोड़ा-सा भी धन नहीं दिया।" (भाग० १०।८१।२०) इत्यादि वाक्योंसे स्पष्ट है धन-सम्पत्ति विषयासक्ति और आसुरावेश का मूल है जो जीवको स्मृतिभ्रष्ट कर भगवद्विमुख कर देती है। इस प्रकार केवल लक्ष्मीकी सेवा मोक्ष और भजनानन्द की साधक नहीं प्रत्युत बाधक ही है। मोक्षविघातक और अनर्थरूप होनेसे पुष्टिमार्गीय उसे त्याज्य ही मानते हैं।

यदि लक्ष्मीके द्वितीयरूपकी अर्थात् श्रीहरिके साथ अथवा श्रीहरिकी सेवाके अनन्तर श्रीहरिकी सहचरीके रूपमें श्रीलक्ष्मीकी सेवा की जाये तो भी वे अपने सेवकको अधिकसे अधिक सालोक्यादि-मोक्ष-पर्यन्त सुख ही उपलब्ध करा सकती हैं। वैकुण्ठमें भी इन भक्तोंको सालोक्यादि सुख ही प्राप्त हो पाता है न कि पुरुषोत्तम भगवान् श्रीहरिका नित्य-संयोगरूप सायुज्य, क्योंकि उसका तो लक्ष्मी स्वयं उपभोग करती हैं। जैसा कि महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यने बालबोधमें कहा है,

'लोकेऽपि यत्प्रभुर्भुङ्क्ते तन्न यच्छति कर्हिचित्।' (बालबोध १४)।

अर्थात् 'लोकमें भी ऐसा देखा जाता है कि स्वभोग्य वस्तुको समर्थ लोग दूसरोंको दान नहीं करते' (बालबोध १४)। लक्ष्मी भी भगवान्‌के साथ नित्य-संयोग-रूप सायुज्य-सुखका भोग स्वयं करती हैं, उसे अपने भक्तोंको दान नहीं करतीं।

भगवान् श्रीहरिकी सहचरीके रूपमें सेवित लक्ष्मी भी सालोक्यादिरूप मोक्ष-सुख ही प्राप्त करा सकती हैं (भगवान्‌से निरन्तर-संयोग-रूप भगवत्सायुज्य या) भजनानन्द नहीं किन्तु भगवदीयोंकी सालोक्यादि-मोक्ष-रूप सुखमें अरुचि होती है और वे दिये जाने पर भी उसे तुच्छ समझकर नहीं ग्रहण करते प्रत्युत भगवत्सेवा या भजनानन्द का

हिन्दी भावार्थ

महान् आनन्द प्राप्त करनेके लिए ही उत्सुक रहते हैं। यह स्वयं भगवान् श्रीहरिके ही,

'सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥' (भाग० ३।२९।१३)।

अर्थात् 'मेरे भक्त मेरी सेवा छोड़कर सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और एकत्व स्वीकार करनेको भी तैयार नहीं होते।' (भाग० ३।२९।१३) इत्यादि वाक्योंसे स्पष्ट है।

'हरेर्यदनु सेवया भवति सौख्यमामोक्षतः' इस वाक्यांश द्वारा श्रीमहाप्रभु यह सूचित करना चाहते हैं कि भगवान् श्रीहरिकी सेवाके बाद उनकी सहचरीके रूपमें लक्ष्मीकी सेवा की जाये तो उस सेवामें भी प्राधान्य तो श्रीहरिकी सेवाका ही है क्योंकि लक्ष्मीकी उक्त सेवा निरपेक्ष न होकर पूर्वभावी श्रीहरिकी सेवाकी अपेक्षा रखती है और उसकी अपेक्षा गौण है। इस सेवासे मोक्षरूप जो फल प्राप्त होता है वह भी मध्यम कोटिका ही है उत्तमकोटिका नहीं और भगवद्भक्तोंकी उसमें कोई रुचि नहीं होती। इस प्रकार लक्ष्मीके इस द्वितीय रूपके उपासकोंको मोक्षरूप मध्यम कोटिके फलकी प्राप्तिके लिए भी लक्ष्मीसे भिन्न श्रीहरिरूप प्रमेय एवं लक्ष्मीकी सेवासे भिन्न श्रीहरि-सेवारूप साधन की अपेक्षा होती है। इससे स्पष्ट है कि लक्ष्मीके इस रूपकी अपेक्षा भी श्रीयमुना उत्कर्षशालिनी हैं।

भगवान्‌की सेवाका आनन्द, भजनानन्द मोक्षकी अपेक्षा भी अत्यधिक उत्कृष्ट है। इसीलिए इसे अदेय बताते हुए श्रीमद्भागवतमें कहा गया है कि मोक्ष देय है किन्तु भक्ति अदेय है,

"भगवान् भजतां मुकुन्दो;
मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न भक्तियोगम् ।" (भाग० ५।६।१८)

अर्थात् 'भगवान् मुकुन्द अपने भक्तोंको मुक्ति भी दे देते हैं किन्तु भक्ति—जो स्वतः मुक्तिसे भी बढ़कर है—(साधारणतया) नहीं देते' (भाग० ५।६।१८)। इस भजनानन्द, भक्ति या नित्य-भगवत्संयोग-रूप सायुज्य की प्राप्ति लक्ष्मीकी सेवासे सम्भव नहीं है प्रत्युत इसके लिए, जैसा कि महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यने अपने तत्त्वार्थदीप-निबन्धमें कहा है, भगवान् श्रीकृष्णकी सेवा ही एकमात्र साधन है,

'आदिमूर्तिः कृष्ण एव सेव्यः सायुज्य-काम्यया' (तत्त्वा० १।१३)।

श्रीयमुना अपने सेवकोंको इस दुर्लभ भजनानन्दकी भी उपलब्धि करा देती हैं। श्रीरणछोड़ कलाधर भट्ट लिखते हैं, 'श्रीयमुना भजनानन्द-स्वरूपा हैं, अपने इसी अदेय स्वरूपानन्दसे वह स्व-सेवकको सम्पन्न कर देती है। लक्ष्मी भगवत्सह अनुभूत सुखको अपने ही लिए, किन्तु श्रीयमुना अपने इसी सुखको स्वसेवकके लिए सुरक्षित रखती है।

हिन्दी भावार्थ

श्रीयमुनाकी परार्थप्रवृत्ति है, लक्ष्मीकी स्वार्थ-बुद्धि। स्वसेवकके लिए स्वसुख-त्यागकी इस अचिन्त्य महिमामें लक्ष्मी श्रीयमुनासे कहीं पीछे रह जाती है[1]।"

इस प्रकार प्रमाण, प्रमेय, साधन, फल एवं स्वभाव की दृष्टिसे श्रीयमुना लक्ष्मीसे अधिक उत्कर्षशालिनी हैं, यह प्रतिपादित किया गया। अब श्रीयमुना द्वारा अपने भक्तोंका तनुनवत्व सम्पादित किये जानेके प्रकारका निरूपण करनेका उपक्रम करते हुए उनके उत्कर्षका वर्णन किया जा रहा है। 'इयं तव कथाऽधिका' इत्यादि वाक्यांश द्वारा श्रीमहाप्रभु भजनानन्दरूप फलकी सम्पादिकाके रूपमें श्रीयमुनाका लक्ष्मीसे अधिक उत्कर्ष प्रतिपादित करते हुए, उनके सर्वाधिक उत्कर्षकी कथाका निरूपण करते हैं।

अपने सेवकोंकी मोक्ष-विघातक या (पुष्टिमार्गीय) भक्तोंको अनभीष्ट सालोक्य-सामीप्यादि मोक्षरूप फल देनेवाली लक्ष्मीसे श्रीयमुना बहुत अधिक विलक्षण उत्कर्षशालिनी हैं। उनकी कथा लक्ष्मीकी कथासे अधिक ही है। वैकुण्ठमें विराजमान श्रीहरिके वक्षःस्थलरूप एक ही अवयवसे सम्बन्धित लक्ष्मीकी कथाकी अपेक्षा, उनके सर्वाङ्गसे, रोम-रोमसे सम्बन्ध रखनेवाली श्रीयमुनाकी यह कथा वस्तुतः अधिक विलक्षण है। 'श्रीयमुनाके इस कथा-रसके समक्ष ब्रह्माण्डकी निखिल रस-निधि केवल रसाभास ही है, मोक्षरस भी नितान्त नगण्य है…। श्रीयमुनाकी यह कथा क्या है? यह कथा श्रीयमुनाके उस अनिर्वचनीय स्वरूपकी है जिसकी अभिव्यक्ति वाणीद्वारा सर्वथा असम्भव है[1]।'

सकल अर्थात् सम्पूर्ण कलाओंसे युक्त पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्णका सारी कलाओंसे पूर्ण चारों प्रकारकी गोपियोंसे सङ्गम हुआ। तज्जन्य श्रमसे भगवान्‌के समग्र श्रीविग्रहपर जल-बिन्दु झलक आये। इन स्मर-श्रम-जन्य जल-कणोंसे श्रीयमुनाका सङ्गम हुआ है और वे अपने आश्रित जीवोंका इनसे सङ्गम करा कर तनुनवत्व सम्पादित करा देती हैं।

श्रीद्वारकेशके अनुसार, 'यदि ये जल-कण सङ्गम-जन्य हैं तो इनके सङ्गम अर्थात् सम्बन्धसे जीवोंका तनुनवत्व कैसे सम्पादित हो सकता है' इस आशङ्काका समाधान विवृतिमें यह कहकर किया गया है कि ये जल-कण वस्तुतः श्रमजन्य स्वेदमात्र नहीं अपितु भगवद्विग्रहके सारे अवयवोंमें व्याप्त विविध सङ्गम-रसके अति उद्रेकसे उच्छलित होकर बाहर आ गये भगवद्रस-बिन्दु हैं। इन्हें तनुनवत्व-सम्पादक कहा गया है; इससे इनके श्रम-जल-मात्र न होकर भगवद्रसरूप होनेकी ही पुष्टि होती है। यदि श्रीमहाप्रभुको इन्हें श्रमजन्य स्वेद-जल मात्र मानना अभीष्ट होता तो उन्होंने इनका 'सकल-गात्रजैः' (अर्थात् भगवान्‌के सम्पूर्ण श्रीविग्रहसे प्रस्रवित या शरीरके सारे अवयवोंसे जन्य) यह

---

[1] श्रीयमुनाष्टकम् : श्रीगोविन्दतोषिणी व्याख्या, पृष्ठ ४५.

हिन्दी भावार्थ

विशेषण न दिया होता, क्योंकि स्वेद शरीरके सारे अवयवोंसे उत्पन्न नहीं होता; केश, नख आदि अवयवोंमें उसकी उपलब्धि नहीं होती।

श्रीरणछोड़ कलाधर भट्ट लिखते हैं, "सकल अर्थात् सम्पूर्ण कलाओं सहित श्रीपूर्ण-पुरुषोत्तमने व्रज-सुन्दरी-वृन्दसे रमण किया। आनन्दके अनन्त अमृत-बिन्दु उच्छलित हो उठे। रमण-सुलभ श्रमके कारण गोपाङ्गनाओं-सहित उस अगणितानन्दमय आदि-मूर्ति श्रीकृष्णके आनन्दमात्र कर, पाद, मुख, उदर आदि प्रत्येक अवयवोंसे, उनके श्रीविग्रहके विविध-रति-रससे परिपूर्ण रोम-रोममेंसे, इसी उच्छलित आनन्दके बहिः-प्रस्रवित प्रस्वेद-बिन्दुओंसे श्रीयमुनाके प्रत्यङ्गका, उसके रोम-रोमका सृजन हुआ है— सङ्गम हुआ है। सात्त्विक, तामस तथा राजस गोपीजनोंकी श्वेत, श्याम तथा रतनार वर्णवाली प्रस्वेद-बिन्दु-धारायें शून्यवद्‌गाढ-नील-वर्णकी प्रस्वेद-बिन्दु-धाराओंमें विलीन हो गयीं। यही अनिर्वचनीय गुणातीत द्रव-रसात्मक तत्त्व श्रीश्यामाके त्रिभुवनाद्भुत-कमनीय विग्रहरूपसे उच्छलित हो उठा[1]।"

श्रीयमुना अपने आश्रित जीवोंको भी पूर्वोक्त रस-बिन्दुओंसे सङ्गत करा देती हैं, भगवत्संयोगानुभव करा देती हैं। इस सुखके समक्ष सालोक्यादि-मोक्षका सुख भी नगण्य है। जिस प्रकार कच्चे मृद्घटमें अग्निसंयोगसे पक्वता एवं जल-धारण आदिकी योग्यता आ जाती है उसी प्रकार श्रीयमुना अपने आश्रित जीवोंका भगवद्विग्रहसे प्रस्रवित रस-बिन्दुओंसे संयोग कराकर उनका तनु-नवत्व सम्पादित कर देती हैं जिससे उनमें लीला-सृष्टिमें किसी भी प्रकारके आवरणसे अनाच्छन्न पूर्ण-पुरुषोत्तमका दर्शन-स्पर्शादि अनुभव कर सकने अर्थात् भगवद्रसके अनुभवको धारण कर सकने का सामर्थ्य आ जाता है। यह सुख सालोक्यादि मुक्तियोंमें भी कहाँ सुलभ हो सकता है? इस भगवद्रसका दान-सामर्थ्य श्रीयमुनाका सर्वोत्कृष्ट आधिक्य है।

गो० श्रीपुरुषोत्तमके अनुसार श्रीयमुनाकी इस विलक्षण कथाका उल्लेख श्रीयमुना-माहात्म्यमें 'केलिसलिला' (अर्थात् जिसके जलमें भगवान् केलि करते हैं वह श्रीयमुना) एवं 'ब्रह्मविद्या-सुधावहा' (अर्थात् भगवान्‌की तरण-लीलाके समय उनके गण्डूष-पातसे भगवन्मुख-निर्गत ब्रह्मविद्यारूप सुधाको बहाकर ले जानेवाली श्रीयमुना) इन नामोंके द्वारा किया गया है। वे कहते हैं कि यद्यपि भगवान्‌के स्मर-श्रम-जन्य जल एवं गण्डूष-जल (अर्थात् तैरते समय मुँहमें भर कर कुल्ला किये गये जल) का श्रीयमुनासे सम्बन्ध भगवान्‌की श्रीयमुना-स्नान करने एवं उसमें तैरने की लीलाके समय ही होता है और इस प्रकार भगवल्लीला-सामयिक ही है तथापि जैसा कि उपर्युक्त द्वितीय श्लोककी

---

[1] श्रीयमुनाष्टकम् : श्रीगोविन्द-तोषिणी व्याख्या, पृष्ठ ४६.

हिन्दी भावार्थ

विवृति-विवृतिमें (ऊपर पृष्ठ १७ पर) उद्धृत,

दिवसे दिवसे भानुराशयायादाय वत्सलः।
उदयाचलतः पुत्रीं नयत्यस्ताचलं मुने ॥
यमुनापि ततो नित्यं गच्छन्त्यास्तेऽश्रयाऽन्वया।
विशल्योघेन साऽदित्युदयाद्रौ पुनः पुनः ॥
एवं भूमौ तथाऽऽकाशे घटीयन्त्रमिवानिशम्।
यमुनास्तोदयाद्रिभ्यां भ्रमन्त्यास्तेऽश्रयोदका ॥

इत्यादि वाक्योंसे स्पष्ट है श्रीयमुनाका सागरसे सूर्यमण्डल एवं वहाँसे भूमिपर सञ्चरण या पुनः पुनः गमनागमन होता रहता है अतः उक्त सम्बन्ध आज भी है ऐसा माननेमें कोई अनुपपत्ति नहीं है। उक्त सम्बन्धके आज भी होनेसे श्रीयमुनाका आज भी वही माहात्म्य है।

इस श्लोकमें श्रीमहाप्रभुने श्रीयमुनाकी उक्त कथाके निरूपक चार विशेषणों द्वारा श्रीयमुनाके अन्तरङ्ग निगूढ स्वरूपका जो सङ्केत किया है उसे श्रीमत्प्रभुचरण एवं गो० श्रीद्वारकेशने अधोलिखित प्रकारसे स्पष्ट किया है। 'सकल-गोपिका-सङ्गम' इस विशेषणके द्वारा यह सूचित किया गया है कि श्रीयमुना परमकाष्ठापन्न पुष्टिमार्गकी अन्तरङ्ग भगवदीया हैं; 'स्मर-श्रम-जलाणुभिः' इस विशेषणके द्वारा यह कहा गया है कि श्रीयमुना सर्वदा स्मर-श्रम-जल-बिन्दुरूप भगवद्रससे परिपूर्ण रहती हैं; 'सकल-गात्रजैः' इस विशेषणके द्वारा यह बताया गया है कि श्रीयमुना भक्तानुगुण हैं और श्रीहरिके भगवद्विग्रहके सारे अवयवोंसे निःसृत रससे परिपूर्ण होनेके कारण अपने सेवकोंको भी इस रससे सम्पन्न कर देती हैं; तथा 'सङ्गमः' इस पदसे यह सूचित किया गया है कि पूर्वोक्त भगवद्रससे सङ्गमके कारण श्रीयमुना लीला-मध्य-पातिनी अर्थात् भगवल्लीला-रसकी सहास्वादिनी हैं।

विवृतिके 'एतल्लीला-मध्य-पातित्वादिकं सूचितम्' इत्यादि वाक्यांशमें प्रयुक्त 'आदि' पदका स्वारस्य बताते हुए गो० श्रीद्वारकेश कहते हैं कि श्रीयमुना लक्ष्मीकी सपत्नी होनेके कारण उनसे विरुद्ध स्वभाववाली हैं। रजोगुण-प्रधान भगवद्विभूतिरूपा लक्ष्मी उन भक्तोंको जो उनकी भगवान्‌से पृथक् स्वतन्त्ररूपसे भक्ति करते हैं भगवद्विमुख करके स्वर्गादिकी प्राप्तिके लोभके कारण प्रवाहमार्गमें डाल देती हैं; किन्तु श्रीयमुना उनकी सपत्नी एवं इसीलिए उनसे विरुद्ध स्वभाववाली होनेके कारण ऐसा नहीं करतीं। लोकमें भी सपत्नियोंका परस्पर-विरोधी स्वभाव देखा जाता है। इसी बातको स्पष्ट करते हुए श्रीमत्प्रभुचरणने, विवृतिमें कहा है कि श्रीयमुना पूर्वोक्त स्मर-श्रम-जन्य जल-बिन्दु-

हिन्दी भावार्थ

रूप भगवद्रससे परिपूर्ण हैं और जो भक्त उनकी अनन्य-भावसे सेवा करते हैं उन्हें भी इस रसका दान करती हैं।

अन्वयबोधिनीमें की गयी इस वाक्यकी व्याख्याको स्पष्ट करते हुए श्रीरणछोड़ कलाधर भट्ट लिखते हैं, "जिस तरह मिट्टीके कच्चे घटमें, अग्निके योगसे पक्वता आ जाती है, उसी तरह श्रीयमुना स्व-सन्निधिमें आनेवाले जीवको तनुनवत्वसे सम्पन्न करती हुई, उसे आवरण-अनाच्छन्न भगवल्लीलाकी अनुभूति करने योग्य बना देती हैं।... अपने सम्पर्कमें आनेवाले जीवकी देहको अलौकिकत्वसे समन्वित करनेकी तो श्रीयमुनाकी प्रकृति है क्योंकि भगवान् सहित सकल गोपीजनोंके प्रत्येक गात्रसे प्रस्रवित रति-श्रम-सुलभ प्रस्वेदके रस-बिन्दुओंसे आपकी एकरूपता—एकतानता है। भगवद्रससे अपनी इस परिपूर्णताके कारण, आपका अनन्य-भावसे भजन करनेवाले जीवको भी इसी रसका दान परमोदारतापूर्वक कर देती हैं। यही आपकी सर्वाधिक महती विलक्षणता है[1]।"

गो० श्रीद्वारकेशके अनुसार यद्यपि भगवान्ने यह कहा है कि 'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते' (गीता ७।१४) अर्थात् 'जो लोग मेरी शरणमें आते हैं वे ही मेरी इस मायाके पार जा पाते हैं' (गीता ७।१४) तथापि रसात्मक श्रीकृष्णने रस-विवश होकर श्रीयमुनामें अपने अष्टविध ऐश्वर्य स्थापित कर दिये हैं अर्थात् अपना अष्टविध ऐश्वर्य श्रीयमुनाको समर्पित कर दिया है। अतएव श्रीयमुना अनन्यभावसे अपनी सेवा करनेवाले भक्तोंका तनुनवत्व सम्पादित कर उन्हें भगवद्रसका दान देती हैं। लोकमें भी ऐसा देखा जाता है कि राजाओंके बड़े अधिकारी भी राजाकी आज्ञाके बिना छोटा-सा कार्य भी नहीं कर पाते और छोटे अधिकारी भी राजाकी आज्ञा या अनुमति से बड़े-बड़े कार्य भी कर लेते हैं; फिर अखिल-लोक-नियन्ता भगवान् श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी प्रिय श्रीयमुना यदि उनकी आज्ञा या अनुमति से भगवद्रसका दान देने, भजनानन्दको लुटाते रहने का कार्य करती हों तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है? ८॥

●

तवाष्टकमिदं मुदा पठति सूरसूते ! सदा ;
समस्तदुरित-क्षयो भवति वै मुकुन्दे रतिः ।
तथा सकल-सिद्धयो मुररिपुश्च सन्तुष्यति ;
स्वभाव-विजयो भवेद् वदति वल्लभः श्रीहरेः ॥ ९ ॥

---

१. श्रीयमुनाष्टकम् : श्रीगोविन्द-तोषिणी व्याख्या, पृष्ठ ४६.

इति श्रीवल्लभाचार्य-विरचितं
श्रीयमुनाष्टक-स्तोत्रं
सम्पूर्णम्

हिन्दी श्लोकान्वयार्थ

(हे) सूरसूते !	हे सूर्यकी पुत्री श्रीयमुने !
इदं तवाष्टकम्	तुम्हारी स्तुतिमें मेरे (श्रीवल्लभाचार्य) द्वारा विरचित इस श्रीयमुनाष्टक-स्तोत्रको
(यः) सदा	जो व्यक्ति सदैव अर्थात् नियमित रूपसे प्रतिदिन
मुदा पठति	प्रसन्नचित्त होकर पढ़ता है
(तस्य) समस्त-दुरित-	उसके सारे पापोंका
क्षयो भवति	क्षय अर्थात् नाश हो जाता है।
वै	इतना ही नहीं उसकी निश्चित रूपसे
मुकुन्दे	मोक्षप्रदाता भगवान् श्रीहरिमें
रतिः (भवति)	रति अर्थात् भक्ति भी हो जाती है।
तथा	उस भगवद्भक्तिसे पाठकर्ताको
सकल-सिद्धयः	सर्वात्मभाव आदि सारी सिद्धियाँ
(भवन्ति)	प्राप्त हो जाती हैं
मुररिपुश्च	तथा मुरारि भगवान् श्रीकृष्ण
सन्तुष्यति	उससे सन्तुष्ट अर्थात् प्रसन्न हो जाते हैं।
स्वभाव-विजयो भवेत्	इस स्तोत्रके पाठकको अपने स्वभावपर विजय प्राप्त हो जाती है अर्थात् दुष्ट स्वभाववाले पाठकका स्वभाव बदल जाता है और वह उत्तम स्वभाववाला हो जाता है।
श्रीहरेः	भगवान् श्रीहरिका स्वीय
वल्लभः	एवं उनका अति प्रिय मैं श्रीवल्लभाचार्य
वदति	ऐसा कहता हूँ अर्थात् यह प्रमाणित करता हूँ कि पूर्वोक्त सारे फल इस स्तोत्रके पाठकको अवश्य मिलते हैं ॥९॥

एवं कालिन्दीं स्तुत्वा एतत्स्तोत्र-पाठ-फलम् आहुः, तवाष्टकम् इति। यद्यपि अन्य-कृतानि अपि स्तोत्राणि सन्ति तथापि वक्ष्यमाणं फलम् एतत्स्तोत्र-पाठेन एव

भवति, न अन्यथा; इति ज्ञापनाय इदम् इति उक्तम् । अन्यकृत-स्तोत्रेषु एवंविध-स्वरूप-निरूपणाभावात् । **इदं तव अष्टकं यः पठति तस्य पूर्वं समस्त-दुरित-क्षयो भवति** । तदनन्तरं मोक्षदातरि अपि स्नेहो भवति । अत एव उक्तं, '**नराणां क्षीणपापानां कृष्णे भक्ति प्रजायते**'[1] इति । **मुकुन्द**-पदाद् यद्यपि मोक्षम् एव साधारण्येन

हिन्दी विवृत्यर्थ

पूर्वोक्त प्रकारसे आठ श्लोकोंमें श्रीयमुनाके अष्टविध ऐश्वर्यका वर्णन, उनके उत्कर्षका निरूपण एवं उनकी स्तुतिकी अशक्यताका उपपादन करते हुए श्रीयमुनाका गुणगान किया गया। तदनन्तर अब इस नवम श्लोकमें श्रीवल्लभाचार्य इस श्रीयमुनाष्टक-स्तोत्रका अनन्य भावसे नियमित पारायण करनेका फल बताते हैं ।

यद्यपि इस स्तोत्रके लिखे जानेके पहलेसे ही श्रीयमुनाके अन्य अनेक स्तुतिकर्ताओं द्वारा विरचित अनेक स्तोत्र उपलब्ध हैं तथापि इस श्लोकमें श्रीयमुना-स्तोत्र-पाठका जो फल निरूपित किया जा रहा है वह इसी श्रीमद्वल्लभाचार्य-विरचित श्रीयमुनाष्टक-स्तोत्रके पाठसे ही प्राप्त होता है, उन पूर्वोल्लिखित अन्य स्तोत्रोंके पाठसे नहीं, क्योंकि श्रीयमुनाके जिस निगूढ स्वरूपका निरूपण इस स्तोत्रमें किया गया है वह अन्य लोगोंके द्वारा लिखे गये स्तोत्रोंमें नहीं मिलता। यह सूचित करनेके लिए श्रीवल्लभाचार्य कहते हैं कि हे सूर्यपुत्री श्रीयमुने ! तुम्हारी स्तुतिमें लिखा गया 'यह अष्टक' अर्थात् प्रकृत श्रीयमुनाष्टक-स्तोत्र इत्यादि । तुम्हारे इस स्तोत्र अर्थात् प्रकृत श्रीयमुनाष्टक को जो भक्त प्रसन्न-चित्तसे नियमितरूपसे प्रतिदिन पढ़ता है उसका पहले तो सारा पाप-समूह नष्ट हो जाता है तदनन्तर उसकी मोक्षप्रदाता श्रीहरिमें स्नेहात्मिका भक्ति उत्पन्न होती है । इसीलिए कहा गया है कि,

जन्मान्तर-सहस्रेषु तपो-ध्यान-समाधिभिः ।
नराणां क्षीणपापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते ॥

अर्थात् 'दूसरे हजारों जन्मोंमें किये गये तप, ध्यान और समाधि के द्वारा जिनके पाप नष्ट हो गये हैं ऐसे निष्पाप व्यक्तियोंकी श्रीकृष्णमें भक्ति उत्पन्न होती है ।' 'इस श्रीयमुनाष्टकका पाठ करनेवालेकी मोक्षप्रदाता भगवान् मुकुन्दमें स्नेहात्मिका भक्ति उत्पन्न हो जाती है', इस वाक्यमें श्रीहरिके लिए 'मुकुन्द' पदका प्रयोग श्रीमहाप्रभुने

---

[1] श्रीवल्लभाचार्यने अपनी सुबोधिनी (१०।८।१८) में इस सम्पूर्ण श्लोकको,

'जन्मान्तर-सहस्रेषु तपो-ध्यान-समाधिभिः ।
नराणां क्षीणपापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते ॥'

इस रूपमें उद्धृत किया है । इस श्लोकके आकरस्थलके विषयमें हमारे द्वारा सम्पादित भक्तिहेतुनिर्णय पृष्ठ ३–४ द्रष्टव्य है ।

सर्वेभ्यो ददाति, तथापि त्वत्स्तुतिपाठात् प्रसन्नो भक्तिम् एव ददाति, न तु मोक्षम् अपि, इति भगवत्स्वभाव-परावर्तकत्वम् उक्तम् ।

ततः किम् इति तत्र आहुः, **तथा सकलसिद्धयः** पूर्वोक्ताः सर्वात्मभावादयः भवन्ति इति शेषः ।

ननु प्रतिबन्धके विद्यमाने सति कथम् एतत्स्तोत्रमात्राद् एतावद् भवति इति चेत्, तत्र आहुः, **मुररिपुश्च सन्तुष्यति** इति । यथा दोषरूपं तन्निरुद्ध-कन्या-सुखप्राप्ति-

हिन्दी विवृत्यर्थ

यह सूचित करनेके लिए किया है कि भगवान् श्रीहरि साधारणतया 'मुकुन्द' (मुकुं=मोक्षं, ददाति इति 'मुकुन्दः') अर्थात् मोक्ष देनेवाले हैं और अपने सभी भक्तोंको मोक्ष ही प्रदान करते हैं, तथापि श्रीयमुनाकी इस श्रीयमुनाष्टक-स्तोत्ररूप स्तुतिके पाठसे प्रसन्न होकर इसका पाठ करनेवाले भक्तको भक्तिका ही दान करते हैं, न कि मोक्षका । श्रीमद्भागवतके, 'भगवान् भजतां मुकुन्दो, मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न भक्तियोगम् ।' (भाग० ५।६।१८) इत्यादि वाक्योंसे ज्ञात होता है कि भगवान् अपने भक्तोंको मोक्ष तक तो दे देते हैं किन्तु अपनी भक्तिका दान सरलतासे नहीं देते । परन्तु इस स्तोत्रके पाठके प्रभावसे भगवान्‌का यह स्वभाव भी परावृत्त हो जाता अर्थात् बदल जाता है और वे श्रीयमुनाके इस स्तोत्रका पाठ करनेवाले भक्तको अपनी परम दुर्लभ स्नेहात्मिका भक्तिका दान कर देते हैं ।

भगवद्भक्ति प्राप्त हो जानेके बाद क्या होता है इस जिज्ञासाका समाधान करते हुए श्रीमहाप्रभु कहते हैं कि इस स्तोत्रके पाठसे प्रसन्न हुए भगवान् मुकुन्द द्वारा अनुग्रहपूर्वक प्रदान की गयी परम दुर्लभ स्नेहात्मिका भक्तिके प्राप्त हो जानेके अनन्तर उस भक्तिसे, इस स्तोत्रके पाठ करनेवाले भक्तको पूर्वोक्त सर्वात्मभाव आदि रूप सारी सिद्धियाँ अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं ।

भगवद्भक्तिकी प्राप्तिके मार्गमें अनेक विघ्न एवं प्रतिबन्धक बताये गये हैं । इन अन्तरायों या प्रतिबन्धकों के विद्यमान रहनेपर केवल इस श्रीयमुनाष्टक-स्तोत्रके पाठमात्रसे ही पूर्वोक्त भगवद्भक्ति एवं उससे होनेवाली सर्वात्मभाव आदि सारी सिद्धियों की प्राप्ति कैसे हो जाती है, इस आशङ्काका अपनोदन करनेके लिए मूल श्लोकमें श्रीमहाप्रभु कहते हैं, 'मुररिपुश्च सन्तुष्यति' (और मुरारि भगवान् श्रीकृष्ण भी सन्तुष्ट अर्थात् प्रसन्न हो जाते हैं) । 'मुरारि' शब्दकी व्याख्या करते हुए प्रथम श्लोककी विवृतिमें बताया जा चुका है कि मुरनामक दैत्य दोषरूप है । इसी मुर दैत्यकी सहायतासे नरकासुरने भगवान् श्रीकृष्णमें अनन्य भाववाली सोलह हजार राजकन्याओंको बन्दी बनाकर रोक रखा था । भगवान् अपने भक्तोंके स्वप्राप्ति (अर्थात् भगवत्प्राप्ति) के मार्गमें आनेवाले विघ्नों एवं प्रतिबन्धों का अनुग्रहपूर्वक स्वयं अपनयन

प्रतिबन्धकं निराकृत्य ता अङ्गीकृतवान् एवम् एतत्पाठेन अपि प्रतिबन्धं निवार्य तम् अपि अङ्गीकरोति इत्यपि ज्ञापनाय मुररिपु-पदम् ।

फलान्तरम् आहुः, **स्वभावविजयो भवेद्** इति । स्वभावस्य विजयः परावृत्तिः भवति । सवासनेति 'वि'-उपसर्गार्थः । दुष्टस्वभावोऽपि उत्तमस्वभावो भवति इत्यर्थः ।

ननु इदम् अनेक-तपः-साध्यं कथम् एतत्पाठमात्राद् इति चेत्, तत्र आहुः, **वदति वल्लभः** इति । तेन आप्तवाक्यत्वेन प्रामाण्यम् उक्तम् ।

ननु इतः पूर्वं केनापि अनुक्तत्वाद् भवदुक्ति-मात्रेण कथं प्रामाण्यम् इति चेत्,

---

हिन्दी विवृत्यर्थ

कर उन्हें (भक्तोंको) अङ्गीकार करते हैं । अपने इस स्वभावके अनुरूप ही उन्होंने दोषरूप मुरका नाश कर, उसके द्वारा निरुद्ध राजकन्याओंके भगवत्प्राप्तिरूप सुखकी उपलब्धिके प्रतिबन्धकको समाप्त कर, उन राजकन्याओंको अङ्गीकार किया था । उसी प्रकार इस स्तोत्रका पाठ करनेसे भगवान् मुरारि इसका पाठ करनेवाले भक्तके भगवत्-प्राप्तिमें आनेवाले प्रतिबन्धकोंका अपनोदन कर उस (श्रीयमुनाष्टक-पारायण-कर्ता भक्त) को भी स्वीकार कर लेते हैं । इस प्रकार इस स्तोत्रके पाठके भगवत्कृत अङ्गीकार रूप इस फलका संसूचन करनेके लिए 'मुररिपु' पदका प्रयोग करते हुए मूल श्लोकमें कहा गया है कि इसके पाठसे मुररिपु भगवान् श्रीहरि सन्तुष्ट अर्थात् प्रसन्न हो जाते हैं ।

श्रीमहाप्रभु इस स्तोत्रके पाठका एक अन्य फल बताते हुए कहते हैं कि इसका नियमित रूपसे पारायण करनेवाले व्यक्तिको अपने स्वभावपर विजय प्राप्त हो जाती है अर्थात् उसके स्वभावकी परावृत्ति हो जाती है । मूल श्लोकमें प्रयुक्त 'विजय' शब्दके घटक 'वि' उपसर्गका आशय यह है कि उस स्तोत्र-पाठकर्ताकी वासनाएं निवृत्त हो जाती हैं और उसका सदोष स्वभाव भी उत्तम स्वभावमें परिवर्तित हो जाता है ।

अनेक जन्मोंकी निरन्तर एवं दुष्कर तपश्चर्यासे भी दुःसाध्य उक्त स्वभाव-विजय-रूप फलकी प्राप्ति इस स्तोत्रके पाठ करने मात्रसे कैसे हो सकती है; इस आशङ्काका निराकरण करते हुए श्रीमहाप्रभु कहते हैं कि 'श्रीहरिका प्रिय, उनका स्वकीय, मैं श्रीवल्लभाचार्य ऐसा कहता हूं,' इसलिए इसे सत्य एवं प्रामाणिक मानना चाहिए । इस प्रकार 'वदति वल्लभः श्रीहरेः' इस वाक्यांशद्वारा श्रीवल्लभाचार्य यह कहना चाहते हैं कि वे यथार्थदर्शवादी आप्तपुरुष हैं और आप्तपुरुषोंके वाक्य प्रमाण होते हैं अतः आप्तपुरुषका कथन या आप्त-कथन होनेके कारण उक्त स्तोत्र-पाठ-फल-निरूपक आप्तवाक्य भी प्रामाणिक है ।

इससे पहले अर्थात् श्रीवल्लभाचार्यद्वारा इस श्लोकमें कहनेके पहले, किसीने ऐसा नहीं कहा है कि श्रीयमुनाके स्तोत्रपाठसे स्वभावपर विजय प्राप्त हो जाती है; अतः

तत्र आहुः, **श्रीहरेः** इति । साक्षाच्छ्रीपुरुषोत्तमसम्बन्धी यतः अहम् अतो वदामि इत्यर्थः ।

अत्र अयम् आशयः । साक्षात्स्वरूपसम्बन्धिनो स्वरूपं साक्षात्तत्सम्बन्धिन एव जानन्ति, न तु अन्ये । श्रीकालिन्द्याः साक्षात्तत्सम्बन्धित्वं पूर्वं प्रकटम् एव उपपादितम् । स्वातिरिक्तानां साक्षाच्छ्रीगोकुलेश-सम्बन्धाभावात् साक्षात्तत्सम्बन्धिन्याः स्वरूपाज्ञानात् तदकथनम् । स्वस्य तु साक्षात्-तादृशत्वात् तत्स्वरूपज्ञानात् तन्-

---

हिन्दी विवृत्यर्थ

केवल श्रीवल्लभाचार्यके कहने मात्रसे इसे प्रामाणिक कैसे मान लिया जाये; इस प्रकारकी आशङ्का करते हुए श्रीवल्लभाचार्यके आप्तपुरुष होनेमें सन्देह प्रकट करनेवाले पूर्वपक्षीकी सन्देह-निवृत्ति करनेके लिए, मूल श्लोकमें श्रीवल्लभाचार्यको 'श्रीहरेः वल्लभः' अर्थात् 'श्रीहरिका स्वीय एवं प्रिय' कहा गया है । तात्पर्य यह है कि श्रीवल्लभाचार्य साक्षात्-श्रीपुरुषोत्तमके सम्बन्धी, उनके अपने एवं अत्यन्त प्रिय हैं; अतः वे उनके और श्रीयमुनाके स्वरूप एवं स्वभाव से सुपरिचित तथा यथादृष्ट निरूपण कर सकनेमें समर्थ आप्त-पुरुष हैं । अतः यदि वे कहते हैं तो इसे प्रामाणिक ही मानना चाहिए ।

गो० श्रीविट्ठलनाथके अनुसार श्रीवल्लभाचार्यके इस कथनका आशय अधोलिखित है । आवरण-अनाच्छन्न साक्षात् श्रीपुरुषोत्तमके स्वरूपके सम्बन्धियों (श्रीयमुना आदि) का वास्तविक निगूढ स्वरूप केवल वे व्यक्ति ही जान सकते हैं जो उन साक्षात् श्रीपुरुषोत्तमके सम्बन्धी हों, अन्य लोग नहीं । श्रीयमुना साक्षात् श्रीपुरुषोत्तमकी सम्बन्धिनी हैं यह तो पहले ही स्पष्टतया प्रतिपादित किया जा चुका है । श्रीवल्लभाचार्यके अतिरिक्त अन्य लोगोंका साक्षात् श्रीगोकुलनाथसे सम्बन्ध नहीं है इसलिए अर्थात् साक्षात् श्रीगोकुलनाथके सम्बन्धी न होनेके कारण, अन्य लोग साक्षात् श्रीपुरुषोत्तमकी सम्बन्धिनी श्रीयमुनाके निगूढ एवं दुर्बोध्य स्वरूपसे अनभिज्ञ हैं । श्रीयमुनाके इस स्वरूपका ज्ञान न होनेके कारण उन्होंने श्रीयमुनाके इस स्वरूपका (और इस स्वरूपकी स्तुति करनेवाले श्रीयमुनाष्टकस्तोत्रके पाठके पूर्वोक्त फलका) कथन या निरूपण नहीं किया है, किन्तु श्रीवल्लभाचार्य तो साक्षात् श्रीकृष्णके सम्बन्धी हैं । उन्हें गो० श्रीविट्ठलनाथने 'श्रीकृष्णास्य' और 'वस्तुतः कृष्ण एव' कहा है । इस प्रकार साक्षात् श्रीकृष्णके अति प्रिय सम्बन्धी होनेके कारण श्रीवल्लभाचार्यको साक्षात् श्रीकृष्ण और उनकी सम्बन्धिनी श्रीयमुनाके निगूढ स्वरूपका सम्यक् ज्ञान है । अतः उन्होंने श्रीयमुनाके निगूढ स्वरूप एवं उसके निरूपक श्रीयमुनाष्टकम्‌के पाठके फलका निरूपण किया है । इस प्रकार जो बात श्रीवल्लभाचार्यसे पहलेके अन्य लोगोंने नहीं कही है उसे निरूपित करनेवाले श्रीवल्लभाचार्यके वाक्य भी प्रमाण हैं और उन्हें आप्तवाक्य माननेमें कोई

कथनम् इति न अनुपपत्तिः काचित् ॥९॥

इति श्रीविट्ठलेश्वर-विरचिता
(गोस्वामिश्रीगोकुलनाथप्रपूरिता)
श्रीयमुनाष्टक-विवृतिः सम्पूर्णा।

हिन्दी विवृत्यर्थ

अनुपपत्ति नहीं है अर्थात् श्रीवल्लभाचार्यके इस कथनमें सन्देह करनेके लिए कोई अवकाश नहीं है कि भक्तोंको इस श्रीयमुनाष्टकका नित्य पाठ करने मात्रसे स्वभाव-विजय-रूप दुष्प्राप्य फलकी प्राप्ति हो जाती है ॥९॥

इस प्रकार **गो० श्रीविट्ठलनाथ**-द्वारा प्रारब्ध तथा
गो० श्रीगोकुलनाथ-द्वारा सम्पूरित
श्रीयमुनाष्टक-विवृति का
गो० श्रीश्याममनोहर-द्वारा प्रारब्ध एवं
श्री केदारनाथ मिश्र-द्वारा सम्पूरित
हिन्दी विवृत्यर्थ
समाप्त हुआ।

हिन्दी भावार्थ

श्रीयमुनाकी स्तुतिपरक श्रीशङ्कराचार्य आदि द्वारा विरचित अन्य प्राचीन स्तोत्र भी हैं। उनकी अपेक्षा इस स्तोत्रकी विशिष्टता एवं असाधारणता बतानेके लिए इस नवम श्लोकमें इस श्रीयमुनाष्टक-स्तोत्रके पाठसे होनेवाले विलक्षण फलका निरूपण किया जा रहा है। 'स्तुतिं तव करोति कः' इत्यादि वाक्यों द्वारा इस स्तोत्रमें श्रीयमुनाके जिस स्वरूपका निरूपण किया गया है उससे अन्य स्तोत्र-कार परिचित नहीं थे, अतः उनके द्वारा विरचित स्तोत्रोंमें श्रीयमुनाके इस (पुष्टिमार्गीय) स्वरूपका निरूपण नहीं मिलता है, और वे स्तोत्र इस श्रीयमुनाष्टकम्के पाठसे मिलनेवाले फलको प्राप्त करा सकनेमें अकिञ्चित्कर हैं। जिसके पाठ-मात्रसे सकल-पाप-निवृत्ति-पूर्वक मोक्षप्रदाता भगवान् श्रीमुकुन्दमें भक्ति और न केवल साक्षाद्भगवत्सेवोपयोगी देहकी प्राप्ति, भगवल्लीलावलोकन, भगवद्रसानुभव एवं सर्वात्मभाव आदि सारी सिद्धियोंकी अपि तु मुरारिपु-सन्तोष अर्थात् भगवत्प्रीति की भी उपलब्धि हो जाये ऐसा एकमात्र स्तोत्र यह श्रीयमुनाष्टकम् ही है, अन्य कोई नहीं।

गो० श्रीविट्ठलनाथ इस स्तोत्रके पाठसे मिलनेवाले फलोंके क्रमको स्पष्ट करनेके लिए मूल-श्लोककी अन्वय करते हुए कहते हैं कि हे श्रीयमुने! जो भक्त आपके इस स्तोत्रका अनन्य भावसे नियमित पारायण करते हैं उनके सबसे पहले तो सारे पाप या

हिन्दी भावार्थ

दोष निवृत्त हो जाते हैं। तदनन्तर अर्थात् भक्तिके प्रतिबन्धक सारे पापों या दोषों के नष्ट हो जानेके बाद मोक्षदाता भगवान् मुकुन्दमें उनकी स्नेहात्मिका भक्ति हो जाती है। यद्यपि यह भक्ति अत्यन्त दुर्लभ है तथापि श्रीयमुनाष्टकके पाठसे प्रसन्न श्रीयमुनाकी कृपासे सुलभ हो जाती है।

श्रीहरिराय लिखते हैं कि श्रीमहाप्रभुने 'समस्त-दुरित-क्षयः' एवं श्रीमत्प्रभुचरणने 'तदनन्तरं मोक्षदातरि अपि स्नेहो भवति' यह कहकर यह सूचित किया है कि इस स्तोत्रका पाठ ब्रह्म-सम्बन्धकी भाँति[1] सारे पापों या दोषों का एकहेलया नाश कर देता है। यदि ऐसा न हो अर्थात् श्रीयमुनाष्टकका पाठ यदि ब्रह्म-सम्बन्धके समान एकहेलया पाठकर्त्ताके सारे पापों या दोषों को नष्ट न कर देता हो, तो पापों या दोषों के अनन्त होनेके कारण वे एक दिनमें निःशेष न हो सकेंगे और उनके आत्यन्तिक नाशके अभावमें भगवान्में स्नेहात्मक भक्तिकी उत्पत्ति अनवसर पराहत हो जायेगी। भगवद्भक्तिकी उत्पत्तिमें दुरित-नाश या दोष-राहित्य की हेतुता या आवश्यक पूर्वभाविता निरूपित करनेके लिए श्रीमत्प्रभुचरणने विवृतिमें एक प्रमाण-वाक्य उद्धृत किया है जिसके अनुसार 'दूसरे हजारों जन्मोंमें किये गये तप, ध्यान और समाधि के द्वारा जिनके पाप नष्ट हो गये हैं ऐसे निष्पाप व्यक्तियोंकी श्रीकृष्णमें भक्ति उत्पन्न होती है।' यह सम्पूर्ण प्रमाणवाक्य,

जन्मान्तर-सहस्रेषु तपो-ध्यान-समाधिभिः।
नराणां क्षीणपापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते ॥

इस रूपमें श्रीवल्लभाचार्यद्वारा उनकी सुबोधिनी (१०।८।१८) में उद्धृत मिलता है। विद्वन्मण्डनकारको भी इस श्लोकका यही पाठ अभिप्रेत प्रतीत होता है (द्रष्टव्य विद्वन्मण्डनम्, पृष्ठ २२१)। श्रीपराशरभट्ट-कृत श्रीविष्णुसहस्रनाम-भाष्य एव श्रीवेदान्त-देशिक-कृत श्रीमद्रहस्यत्रयसार में भी यह श्लोक इसी रूपमें उद्धृत मिलता है।

गो० श्रीपुरुषोत्तमने सुबोधिनी (१०।४७।२४) की अपनी प्रकाश-व्याख्यामें इसे अधोलिखित रूपमें उद्धृत किया है,

जन्मान्तर-सहस्रेषु तपो-ध्यान-समाधिभिः।
नराणां क्षीण-पापानां कृष्णे भक्तिर्हि जायते ॥

उक्त श्लोकको कभी अत्रि-स्मृतिका तो कभी पाञ्चरात्रका उद्धरण बताया जाता है[2]।

---

[1] तुलनीय : ब्रह्म-सम्बन्ध-करणात् सर्वेषां देह-जीवयोः। सर्वदोष-निवृत्तिर्हि। (सि०र० २)।

[2] द्रष्टव्य : भक्ति-हेतु-निर्णय (श्रीकेदारनाथमिश्र-सम्पादित) पृष्ठ १-४, टिप्पणी २.

हिन्दी भावार्थ

यद्यपि जैसा कि भगवान् श्रीकृष्णके 'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते' (गीता ४।३७) अर्थात् 'ज्ञानकी अग्नि सारे कर्मोंको भस्म कर देती है' (गीता ४।३७) इत्यादि वाक्योंसे ज्ञात होता है, ज्ञानसे भी सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, परन्तु वहाँ अर्थात् उस मार्गका अनुसरण करनेपर, ज्ञान प्राप्त करनेमें, अत्यधिक क्लेश उठाने पड़ते हैं; जबकि यहाँ इस स्तोत्रके पाठमात्रसे अनायास ही सारे पापोंकी निवृत्ति सम्पादित हो जाती है। इस प्रकार इस स्तोत्रके पाठका ज्ञानप्राप्तिकी अपेक्षा उत्कर्ष सूचित किया गया है।

इस प्रकार इस स्तोत्रके पाठके प्रभावसे समस्त दोषोंकी निवृत्ति, तदनन्तर भगवान्‌की परम दुर्लभ स्नेहात्मिका भक्तिकी उपलब्धि और तदनन्तर उस भक्तिसे, प्रथम श्लोककी विवृतिमें गो० श्रीविट्ठलनाथ द्वारा उल्लिखित सकल सिद्धियाँ अर्थात् साक्षाद्-भगवत्सेवोपयोगी देहकी प्राप्ति, भगवल्लीलावलोकन, भगवद्रसानुभव एवं सर्वात्मभाव आदि प्राप्त हो जाती हैं।

मूल श्लोकके 'सकल-सिद्धयः' पदका गो० श्रीविट्ठलनाथने अपनी विवृतिमें यही अर्थ किया है। गो० श्रीद्वारकेशने इस पदका विवृतिसे भिन्न एक अन्य अर्थ अधोलिखित प्रकारसे किया है। सकल अर्थात् सारी कलाओंसे युक्त पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके रमणकी सिद्धि जिनसे होती है वे अर्थात् गोपियाँ ही 'सकल-सिद्धयः' हैं। पूर्वोक्त भवद्रतिसे गोपियाँ और मुररिपु भगवान् श्रीहरि दोनों सन्तुष्ट होते हैं।

'मुररिपु' पदका आशय स्पष्ट करते हुए श्रीद्वारकेश कहते हैं कि भगवान् एवं उनकी भक्ति की प्राप्तिमें अनेक विघ्न आते हैं। उनमेंसे कुछका तो निरास हो जाता है किन्तु भगवत्कृत प्रतिबन्धोंका निराकरण शक्य नहीं होता। ऐसे प्रतिबन्धक दोषों—उदाहरणार्थ मानभाव या भगवद्-भक्तोंके प्रति द्वेषबुद्धि—की उपस्थितिमें इस स्तोत्रका पाठ करनेवालोंकी भगवान्‌में स्नेहात्मिका भक्ति कैसे होगी, इस आशङ्काको दृष्टिस्थ कर श्रीमत्प्रभुचरणने अपनी विवृतिमें 'मुररिपु' पदकी व्याख्या की है। उनके अनुसार भगवद्भक्तोंके प्रतिबन्धकोंको निवृत्त करते रहनेकी भगवान्‌की सहज रुचि है। उन्हें उनके इस स्वभावके कारण ही 'मुररिपु' कहा जाता है। श्रीयमुनाष्टकके पारायणसे प्रसन्न होकर वे इसके पाठकर्ताके प्रतिबन्धकोंका निवारण, सारे प्रत्यूह-व्यूहका समुन्मूलन कर उसे स्वकीय बना लेते हैं।

लोकमें भी ऐसा देखा जाता है कि अपना गुण-सङ्कीर्तन सुनकर लोगोंको जितना सन्तोष होता है उससे अधिक परितोष अपने प्रिय व्यक्तिके उत्कर्ष-सङ्कीर्तनको सुनकर होता है। श्रीयमुना श्रीहरिकी प्रिया हैं। वे उन्हें निरतिशय प्रिय हैं, क्योंकि वे

हिन्दी भावार्थ

भगवान्‌के हार्दसे एकान्त-परिचय रखनेवाली, उनकी अन्तरङ्ग-अभिज्ञावाली हैं। अतः ऐसी प्रियतमा श्रीयमुनाकी इस अष्टकसे स्तुति करनेपर अपने भक्तोंके सारे प्रतिबन्धोंके निवारक भगवान् श्रीहरि सन्तुष्ट अर्थात् सम्यक् प्रकारसे तुष्ट हो जाते हैं और जैसे उन्होंने श्रीयमुनाकी सन्निधिमें सन्तुष्ट होकर गोपाङ्गनाओंको रासादिका सुख प्रदान किया था, उसी तरह वे स्तोत्र-पाठकर्त्ताओंको भी अनुगृहीत करेंगे। श्रीमहाप्रभु पहले भी कह चुके हैं, 'प्रियो भवति सेवनात्तव हरेर्यथा गोपिकाः' (श्रीय० ६)।

'मुररिपुश्च सन्तुष्यति' इस वाक्यांशमें आये 'च' को स्वामिनी-वर्गका बोधक बताते हुए गो० श्रीहरिराय और गो० श्रीद्वारकेशने इसका अर्थ यह किया है कि श्रीयमुनाष्टकके पाठसे भगवान् श्रीहरिके तुष्ट हो जानेपर उस आवरण-अनाच्छन्न भगवल्लीला-मध्यपाती जीवपर स्वामिनियाँ भी प्रसन्न हो जाती हैं। श्रीयमुना स्वामिनी-वर्गको भी अतिप्रिय हैं। कात्यायनी-व्रत-प्रसङ्गमें भगवत्प्राप्ति एवं रासोत्सवमें भगवदनुभूति उन्हें श्रीयमुनाके सेवन तथा सान्निध्य से ही तो हुई थी। ऊपर कहा जा चुका है कि अपने गुण-सङ्कीर्तनकी अपेक्षा अपने प्रियका गौरव-कीर्तन श्रवण करना अधिक परितोष-दायक होता है। अतः अपनी अत्यन्त प्रिय श्रीयमुनाके गुण-सङ्कीर्तनसे स्वामिनियाँ क्यों न प्रसन्न होंगी! इस प्रकार श्रीयमुनाष्टकके पाठकर्त्तासे भगवान् श्रीहरि तो प्रसन्न होते ही हैं स्वामिनियाँ भी भगवत्प्रियत्वरूप स्वभोग्य फलके भोक्ता उस जीवके प्रति, भगवत्प्रिय मुरलीके प्रति रखे गये ईर्ष्यालुभावके समान ईर्ष्याका भाव नहीं रखतीं प्रत्युत उसपर प्रसन्न होती हैं क्योंकि भगवत्प्रियोंके कलिदोषका निवारण करनेवाली श्रीयमुनाकी प्रसन्नता सभी भक्तोंके परितोषका कारण है।

उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि इस स्तोत्रका पाठ अधोलिखित प्रकारसे भगवत्-स्वभाव-परावर्तक है। भगवान् प्रसन्न होकर अपने भक्तोंको प्रायः मुक्ति ही प्रदान करते हैं। अपने इस स्वभावके कारण ही उनका 'मुकुन्द' यह अन्वर्थ नाम प्रसिद्ध है। इस नामकी निरुक्ति है, मुकुं—मोक्षं ददाति इति मुकुन्दः। किन्तु जैसे लीला-सृष्टिस्थ जीवोंको श्रीयमुनाका साक्षात्कार हुआ था तथा श्रीयमुनाके उनसे सम्बन्धके कारण भगवान् उनपर प्रसन्न हो गये थे, और उन्हें रस-संयोगरूप दुर्लभ भक्ति प्रदान की थी; उसी प्रकार आधुनिक भक्त—जिन्हें श्रीहरि साक्षात् उपलब्ध नहीं हैं—जब इस स्तोत्रका पाठ करते हैं तो श्रीयमुनाके उन भक्तोंपर प्रसन्न होनेके कारण, श्रीयमुनाके सम्बन्धसे श्रीहरि उनपर प्रसन्न हो जाते हैं और उन्हें भक्तिका ही दान करते हैं, न कि मोक्ष का। मूल-श्लोकमें निश्चयवाचक 'वै' पदके प्रयोगका तात्पर्य यही है कि भगवान् उसे भक्ति ही प्रदान करते हैं, मोक्ष नहीं। इस प्रकार इस स्तोत्रका भगवत्स्वभाव-परावर्तकत्व इसीमें है कि इस स्तोत्रके द्वारा किये गये अपनी निरतिशय प्रिय श्रीयमुनाके

हिन्दी भावार्थ

गुण-सङ्कीर्तनसे प्रसन्न होकर श्रीहरि इसके पाठकर्त्ताको अपने मुकुन्द-स्वभावके प्रतिकूल होते हुए भी मोक्ष न देकर अपनी दुर्लभ भक्ति ही प्रदान करते हैं ।

इस प्रकार इस स्तोत्रके पाठका सकल-दुरिताभावपूर्वक भगवद्भक्तिकी निष्पत्तिरूप एक फल निरूपित करते हुए इस स्तोत्रके भगवत्स्वभाव-परावर्तक होनेका प्रतिपादन किया गया । अब, 'स्वभाव-विजयो भवेत्' इस वाक्यांशद्वारा श्रीमहाप्रभु इस श्लोकके पाठका स्वभाव-विजय-रूप एक अन्य फल निरूपित करते हुए बताते हैं कि यह स्तोत्र जीवके स्वभावका भी परावर्तक है । इस स्तोत्रके पाठसे प्रसन्न हुई श्रीयमुना जब मोक्षदाता श्रीमुकुन्दके स्वभावको बदलकर उन्हें भक्तिदाता बना देती हैं, तो उनके, जीवों—जिन्हें स्वभावतः दुष्ट कहा गया है—के दुष्ट-स्वभावको बदलकर उन्हें उत्तम स्वभाववाला बना देनेमें सन्देहके लिए अवकाश कहाँ हो सकता है !

इस जीव-स्वभाव-परावृत्तिरूप स्वभाव-विजयका स्वरूप इस पदकी व्याख्या करते हुए गो० श्रीहरिराय, श्रीबालकृष्ण भट्ट एवं गो० श्रीद्वारकेशने कई प्रकारसे निरूपित किया है ।

श्रीबालकृष्णभट्ट कहते हैं कि श्रीयमुना स्वभाव-विजयवती हैं, अतः, श्रीपद्मनाभ आदिका स्मरण करनेसे अच्छी नींद आ जानेके समान ही, उनके इस स्तोत्रके पाठसे स्वभाव-विजय प्राप्त हो जाना युक्त ही है । श्रीयमुनाके स्वभाव-विजयका उल्लेख श्रीवल्लभाचार्यने श्रीमद्भागवत (१०।२१।११) की अपनी सुबोधिनीमें 'ज्ञानोत्कर्षः सदैव स्यात् स्वभाव-विजयो यदि' (भाग० सुबो० १०।२१।११।७) कहकर किया है । भगवान् श्रीकृष्णका वेणुनाद सुनकर नदियोंकी क्या दशा हुई इसका वर्णन श्रीमद्भागवतके,

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीतमावर्त-लक्षित-मनोभव-भग्नवेगाः[1] ।
आलिङ्गन-स्थगितमूर्मि-भुजैर्मुरारेर्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः ॥ (भाग० १०।२१।१५) इस वाक्यमें किया गया है । श्रीभट्ट कहते हैं कि इस वाक्यसे ज्ञात होता है कि भगवान् श्रीकृष्णने अपने वेणुनादके द्वारा प्रवहणैक-स्वभावा अर्थात् निरन्तर प्रवहणशीला श्रीयमुनाका भग्नवेगत्व सम्पादित कर उन्हें स्वभाव-विजयवती बना दिया है ।

---

[1] भगवद्-वेणुनादेन नद्यादिषु ज्ञानम् आह, **नद्यस्तदा** इति । यदा मुनयो भगवतानुगृहीता वेणुद्वारा सर्वं तत्त्वं ज्ञातवन्तः **तदा नद्यः** अपि, वयमपि कृतार्थाः भविष्यामः इति **तदुपधार्य** मुनीनां ज्ञानोपदेशं निश्चित्य, **तत्** प्रसिद्धं, मोक्षदातुः **गीतं** श्रुत्वा, **आवर्तेन** भ्रमणेन मूर्च्छया, **लक्षितो** योऽयं **मनोभवः**, तेन स्तम्भ-जनकेन, **भग्नो वेगो** यासां, स्वाभाविकी गतिः कुण्ठिता, **मनोभवः** अत्र विवेकः । प्रयोजनार्थम् उक्तं **मुरारेः** इति । मुरो हि जलदोषात्मकाविद्यारूपः, तस्य अरित्वाद् अवश्यं चरण-सम्बन्धे नदीनाम् अविद्यां नाशयिष्यति । (सुबो० १०।२१।१२) ।

हिन्दी भावार्थ

गो० श्रीहरिरायके अनुसार यहाँ 'स्वभाव-विजय'का अर्थ यह है कि 'काममयोऽयं पुरुषः' (बृह० उप० ४।४।५) इत्यादि वाक्यों द्वारा निरूपित जीवके काम-भावरूप स्वभावकी, सर्वात्मभावकी सिद्धि द्वारा, परावृत्ति हो जाती है । उनके अनुसार 'स्वभाव-विजय'का एक अन्य वैकल्पिक अर्थ सात्त्विक आदि स्वभावका स्वाधीनीकरण अर्थात् लीलामार्गोपयोगी प्रवर्तन है । उन्होंने 'स्वभाव-विजय'का एक तीसरा अर्थ भी किया है । इस अर्थके अनुसार, भगवद्धर्मोंके प्रवेशसे जन्य मान आदि रूप स्वभावकी, दैन्यभावकी सिद्धिसे, परावृत्ति हो जाना ही स्वभाव-विजय है । शुद्ध-पुष्टिमार्गके विचारसे उपर्युक्त मान आदि रूप स्वभाव सदोष ही माना जायेगा । अतः विवृतिमें गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथका यह कथन कि दुष्ट-स्वभाववाले भी उत्तम-स्वभाववाले हो जाते हैं, भी, इस अर्थके साथ सुसङ्गत हो जाता है ।

गो० श्रीद्वारकेशने 'स्वभाव-विजय' पदका विस्तारसे विवेचन किया है । वे कहते हैं कि यहाँ स्वभावसे तात्पर्य जीवके स्वभावसे है जो जीवका जीवत्व या जीवभाव ही है । यह जीवभाव, जैसा कि श्रीवल्लभाचार्यके 'आनन्दांशस्तु पूर्वमेव तिरोहितो येन जीवभावः' (अणुभाष्य ३।२।५) आदि वाक्योंसे ज्ञात होता है, सच्चिदानन्दरूप ब्रह्मके आनन्दांशके तिरोहित हो जानेपर सम्पादित होता है । तदनन्तर जीवका पञ्चपर्वा अविद्यासे सम्बन्ध होता है जिसके फलस्वरूप वह संसारके दुरन्त पाशमें बँध जाता है । इस अविद्याका प्रथम पर्व ही स्वरूपाज्ञान है जिसके कारण जीवको स्वरूप-विस्मृति हो जाती है अर्थात् उसे अपने भगवदंश एवं भगवत्सेवक होनेका विस्मरण हो जाता है, फलतः वह भगवान्‌से पराङ्मुख हो जाता है । जीवका यह स्वभाव, जिसे गोस्वामी श्रीद्वारकेशने 'भगवद्-बाहिर्मुख्य' कहा है, ही उसका सर्वप्रमुख दोष है । श्रीयमुनाके इस स्तोत्रके पारायणसे जीव, दैन्यभावकी सिद्धिसे, अपने इस सदोष स्वभावपर विजय प्राप्त कर लेता है और भगवदुन्मुख हो जाता है । यह स्पष्ट करते हुए गो० श्रीद्वारकेश कहते हैं कि श्रीयमुनाके प्रति अपने निरवधि प्रेमके आग्रहसे प्रेम-विवश होकर आनन्द-मात्र-कर-पाद-मुखोदरादि प्रभु इस स्तोत्रके पाठकर्त्ताके हृदयमें आविर्भूत हो जाते हैं, फलतः उसका आन्तरिक तनुनवत्व सम्पादित हो जाता है और उसकी भगवद्-बहिर्मुखता दूर हो जाती है । इस प्रकार उसका 'भगवद्-बाहिर्मुख्य'का स्वभाव परावृत्त हो जाता है तथा, जैसा कि 'स्वभाव-विजय' पदमें आये 'वि' उपसर्गका अर्थ स्पष्ट करते हुए विवृतिमें गो० श्रीविट्ठलनाथने कहा है, उस जीवकी कर्म-वासनाओंकी पुनः उत्पत्ति स्थगित हो जाती है । श्रीगोविन्द-तोषिणीकारके शब्दोंमें, 'प्रेम-विवश भगवान्, स्तोत्र-सङ्कीर्तक-जीवके हृदयमें आविर्भूत होते हैं । आनन्दांशके स्फुरण-मात्रसे, पञ्च-पर्वात्मक अविद्याका अन्धकार विलीन हो जाता है और जीव कृतार्थः जीवत्वकी निवृत्ति

होती है—भगवदीयत्वका आविर्भाव—अर्थात् दुष्ट-स्वभावका सुष्ठु-स्वभावमें परिवर्तन हो जाता है।'

'स्वभाव-विजय'का एक अन्य वैकल्पिक अर्थ करते हुए गो० श्रीद्वारकेश कहते हैं कि 'स्वभाव' शब्द मनका बोधक है और उसकी विजयसे तात्पर्य उसको स्वतन्त्रता-पूर्वक प्रवृत्त कर सकनेके सामर्थ्यसे है।

'स्वभाव-विजय'का एक अन्य वैकल्पिक अर्थ गो० श्रीद्वारकेशने अधोलिखित प्रकारसे किया है। 'स्व' अर्थात् जीवका, 'भाव' अर्थात् श्रीगोकुलके प्राणप्रिय श्रीकृष्णकी सेवारूप सहज धर्म। उसकी 'विजय' अर्थात् उसका विविध प्रकारसे ('वि') परम उत्कर्ष ('जय')। इस प्रकार जीवके भगवत्सेवारूप सहज धर्मका उत्कर्ष सम्पादित हो जाना ही 'स्वभाव-विजय' है। गो० श्रीविट्ठलनाथने अपनी विवृतिके 'स्वभावस्य विजयः परावृत्तिः' इत्यादि वाक्यमें स्वभावके 'विजय'के लिए 'परावृत्ति' पदका प्रयोग किया है। प्रकृत अर्थमें उस पदकी अन्विति की सङ्गति स्पष्ट करते हुए गो० श्रीद्वारकेश कहते हैं कि स्वभावकी परावृत्तिका अर्थ है जीवके भगवत्-सेवारूप सहज धर्मकी परा अर्थात् अत्यन्त, आवृत्ति अर्थात् पुनःपुनः सेवन या सम्पूर्ण-सेवाधिकार-सिद्धि, जो वस्तुतः सेवाफल-ग्रन्थमें प्रतिपादित अलौकिक-सामर्थ्यरूप फलकी प्राप्ति ही है। इस अर्थको स्वीकार करनेपर विवृतिके 'सवासना इति वि-उपसर्गार्थः' इस वाक्यकी क्या सङ्गति होगी, इसे स्पष्ट करते हुए अन्वयबोधिनीमें कहा गया है कि 'विजय' पदके घटक 'वि' उपसर्गका आशय यह है कि जीवकी विभिन्न वासनाओं अर्थात् उसके विविध मनोरथोंकी पूर्ति हो जाती है और उसे उस मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है जिसका निरूपण 'कृष्णोऽहं पश्यत गतिम्' (भाग० १०।३०।१९) इत्यादि श्लोकमें किया गया है।

'अनेकों जन्मके तपश्चरणसे भी दुःसाध्य यह कृतकृत्यता, स्वभावपर यह विजय स्तोत्रके पाठ-मात्रसे क्योंकर सिद्ध मानी जा सकती है? इसके समाधानमें, इस असम्भाव्य चमत्कृतिकी प्रतीतिके प्रतिपादनमें क्या प्रमाण[1] ?' इस आशङ्काके समाधानके लिए प्रमाणरूपमें अपनी आप्तताका निर्देश करते हुए श्रीवल्लभाचार्य श्लेष अलङ्कारका आश्रय लेकर, अपने नामका उल्लेख करते हैं, 'वदति वल्लभः श्रीहरेः।' गोस्वामी श्रीद्वारकेश कहते हैं कि प्रिय, जिसके प्रिय होते हैं उसका अभिप्राय जानकर ही कुछ कहते हैं। श्रीवल्लभाचार्य श्रीहरि अर्थात् स्वामिनियोंसे युक्त सर्व-दुःख-हर्ता साक्षात् श्रीपुरुषोत्तमके प्रिय-सम्बन्धी—और इसीलिए, उनका आशय जाननेवाले यथार्थवादी आप्तपुरुष हैं, अतः स्वभाव-विजय-रूप उक्त अश्रुतपूर्व स्तोत्र-पाठ-फलकी प्राप्तिमें, उनका कथन ही, आप्तवाक्य होनेसे, प्रमाण है।

---

[1] श्रीयमुनाष्टकम् : श्रीगोविन्द-दीपिनी-व्याख्या, पृष्ठ ४६.

गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथकी विवृतिके 'साक्षात् श्रीपुरुषोत्तम-सम्बन्धी यतोऽहम् अतो वदामि' इस वाक्यमें आये 'साक्षात्' पदका तात्पर्य यह है कि यद्यपि निस्साधन गजराजके दैन्यको देखकर उसके उद्धारार्थ प्रादुर्भूत हुए प्रभुको, किसी भी साधनका विचार किये बिना केवल दैन्यको देखकर प्रादुर्भूत होनेके कारण, पुष्टिमार्गीय कहा गया है, तथापि वहाँ भी प्रभुका आविर्भाव विशुद्ध-सत्त्वके व्यवधान-सहित हुआ था और वह भी साक्षात् प्रादुर्भाव नहीं था। किन्तु श्रीवल्लभाचार्यका प्रभुसे साक्षात् सम्बन्ध है यह मूल श्लोकमें केवल 'हरि' पदका प्रयोग न कर 'श्रीहरि' पदका प्रयोग किये जानेसे सूचित होता है। सौन्दर्य आदि रसानुभावक धर्म पुष्टिमार्गमें ही प्रकट होते हैं। ऐसे पुष्टिमार्गीय प्रभुके प्रिय सम्बन्धी होनेके कारण महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यके आप्तवचन परम प्रमाण हैं।

गो० श्रीपुरुषोत्तमने अपनी विवृतिमें यह स्पष्ट किया है कि मूल श्लोकमें 'मुदा' एवं 'सदा' पदोंके द्वारा, तथा 'वदति वल्लभः श्रीहरेः' कहकर अपने आप्तत्वके उल्लेख द्वारा, श्रीवल्लभाचार्यने इस स्तोत्रके पाठके अङ्गोंका सङ्केत किया है। यहाँ 'मुदा' पदके द्वारा आनन्द, एवं 'सदा' पदके द्वारा प्रतिदिन पाठ करनेके नियम को इस स्तोत्रके पाठका अङ्ग बताया गया है। इसी प्रकार महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यमें निष्ठा एवं विश्वास भी इस श्रीयमुनाष्टक-स्तोत्रके पाठका अङ्ग है ॥९॥

सविवृति श्रीयमुनाष्टकका
गो० श्रीश्याममनोहरकृत एवं श्रीकेदारनाथमिश्रसम्पूरित
हिन्दी श्लोकान्वयार्थ, हिन्दी विवृत्यर्थ तथा हिन्दी भावार्थ
समाप्त हुआ।

वसुधा-वेद-शून्याक्षि-(२०४१) मितेऽब्दे वैक्रमे, तिथौ।
आश्विने मासि पूर्णायां, व्याख्येयं पूर्तिमागता॥

* श्रीकृष्णार्पणमस्तु *

सङ्केत-सूची

अ०	अणुभाष्यम् श्रीमद्वल्लभाचार्य-महाप्रभु-विरचितम्
अ० को०	अमरकोषः
अष्टा०	पाणिनीयाष्टाध्यायी
अष्टा० वा०, अष्टा० वार्तिक	पाणिनीयाष्टाध्यायीवार्तिकम्
उत्त०	उत्तररामचरितम्
ऋग्वेदखिल०	ऋग्वेदखिलसूक्त
ऋक्सं०	ऋक्संहिता
का०	कारिका
कृष्णोप०	कृष्णोपनिषत्
कौषी० उप०	कौषीतक्युपनिषत्
गीतगो०	गीतगोविन्दः श्रीजयदेवकृतः
गीता	श्रीमद्भगवद्गीता
गोपालोत्तरता०	गोपालोत्तरतापिन्युपनिषत्
छान्दो० उप०	छान्दोग्योपनिषत्
तत्त्वा०	तत्त्वार्थदीपनिबन्धः श्रीवल्लभाचार्यमहाप्रभुकृतः
तत्त्वा० प्र०	तत्त्वार्थदीपनिबन्धप्रकाशः श्रीवल्लभाचार्यमहाप्रभुकृतः
तै० उप० = तैत्ति० उप०	तैत्तिरीयोपनिषत्
तैत्ति० ब्रा०	तैत्तिरीय ब्राह्मण
धातुपाठ	
निरो० = निरोधल०	निरोधलक्षणम्
निर्णयार्णवः	श्रीबालकृष्णभट्टकृतः
पद्मपु०	पद्मपुराणम्
बालबो०	बालबोधः श्रीवल्लभाचार्य-महाप्रभु-विरचितः
बृह० उप०	बृहदारण्यकोपनिषत्
ब्र०	ब्रह्मसूत्र
भाग०	श्रीमद्भागवतमहापुराणम्
महाना० = महानारायणोप०	महानारायणोपनिषत्
महाभा०	महाभारतम्
महावाक्योप०	महावाक्योपनिषत्
विवे०	विवेकधैर्याश्रयः श्रीवल्लभाचार्यमहाप्रभुकृतः
विष्णुपु०	विष्णुपुराणम्
श्रीयमुनाष्टपदी	गोस्वामिश्रीविट्ठलनाथकृता
श्रीय०	श्रीयमुनाष्टकम् श्रीवल्लभाचार्यमहाप्रभुविरचितम्
श्रीय० टि०	श्रीयमुनाष्टकविवृतिटिप्पणं श्रीहरिरायकृतम्
श्रीवल्लभाष्टकम्	गोस्वामिश्रीविट्ठलनाथकृतम्
सिद्धा० मु०	सिद्धान्तमुक्तावली श्रीवल्लभाचार्यमहाप्रभुकृता
सि० र०	सिद्धान्तरहस्यम् श्रीवल्लभाचार्यमहाप्रभुकृतम्
सुबो० = भाग० सुबो०	सुबोधिनी श्रीवल्लभाचार्य-महाप्रभुकृता श्रीमद्भागवतमहापुराणटीका ।
सेवाफ०	सेवाफलम् श्रीवल्लभाचार्यमहाप्रभुकृतम्
सेवाफ० वि०	सेवाफलविवरणम् श्रीवल्लभाचार्य-महाप्रभु-कृतम्
सर्वोत्तम०	सर्वोत्तमस्तोत्रं गोस्वामि-श्रीविट्ठलनाथविरचितम्

क. गोस्वामिश्रीविट्ठलनाथकृतविवृति तथा गोस्वामिश्रीहरिरायकृत टिप्पण सहित पं० श्रीबलभद्र शर्मा द्वारा सम्पादित (शुद्धाद्वैत सिद्धान्त कार्यालय, बम्बईसे वि० सं० १९७२ में प्रकाशित, निर्णयसागर प्रेसमें मुद्रित) श्रीयमुनाष्टकम्का संस्करण ।

ख. गो० श्रीविट्ठलनाथकृतविवृति तथा गो० श्रीपुरुषोत्तमकृत विवृतिविवृति सहित श्रीबलभद्रशर्मा द्वारा सम्पादित (शुद्धाद्वैत सिद्धान्त कार्यालय, बम्बईसे वि० सं० १९७२ में प्रकाशित, निर्णयसागर प्रेसमें मुद्रित) श्रीयमुनाष्टकम् का संस्करण ।

ग. गो० श्रीविट्ठलनाथकृत विवृति, गो० श्रीहरिरायकृत टिप्पण, गो० श्रीपुरुषोत्तमकृत विवृतिविवृति तथा गो० श्रीद्वारकेशकृत टिप्पण सहित श्रीचीमनलाल शास्त्री द्वारा सम्पादित (वि० सं० १९८५ में श्रीबालकृष्ण शुद्धाद्वैत महासभा कार्यालय सूरत से प्रकाशित, गुजराती प्रिंटिंग प्रेस बम्बईमें मुद्रित) श्रीयमुनाष्टकम्का संस्करण ।

घ. मरीचिकावृत्तिकार श्रीव्रजनाथ भट्टकी हस्तलिखित तथा श्रीबलभद्र शर्मा द्वारा 'क' में 'क' संज्ञासे प्रयुक्त गो० श्रीहरिरायकृत श्रीयमुनाष्टकविवृतिटिप्पणम्की प्रति ।

ङ. श्रीबलभद्र शर्मा द्वारा 'क' में सूचित तथा प्रयुक्त विवृति एवं श्रीहरिरायकृत टिप्पणम् की विभिन्न हस्तलिखित प्रतियाँ ।

च. श्रीबलभद्र शर्मा द्वारा 'ख' में प्रयुक्त विवृति एवं विवृतिविवृति की हस्तलिखित प्रतियाँ ।

छ. श्रीचीमनलाल शास्त्री द्वारा 'ग' संस्करणकी टिप्पणियोंमें सूचित पाठवैशिष्ट्य ।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११	३	१६७०	१६७१
६	१४	सम्बन्धिन्या	सम्बन्धिन्यां[२]
१२	२६	मुदाति	मुदेति
२५	६	निरूपणेन	निरूपणेन[२]
२६	२८	मनीषिणः ॥[१]	मनीषिणः ॥[१] (भाग०सुबो० १०।२१।११।२)
२७	६	तदा[१]	तदा ।[१] (भाग०सुबो० १०।२१।११।२)
२७	११	देवेषु[१]	देवेषु[१] (भाग०सुबो० १०।२१।११।३)
२७	१४	वारणात्	वारणात्[१] (भाग०सुबो० १०।२१।११।४)
२७	१७	यदि	यदि[१] (भाग०सुबो० १०।२१।११।७)
२७	२५	महत् ॥[१]	महत् ॥[१] (भाग०सुबो० १०।२१।११।३)
२७	२८	नान्यथा ॥[१]	नान्यथा ॥[१] (भाग०सुबो० १०।२१।११।४)
२८	१०,२७,३०	यदि[१]	यदि[१] (भाग०सुबो० १०।२१।११।७)
२९	६	यदि ।[१]	यदा ॥[१] (भाग०सुबो० १०।२१।११।८)
३०	१६	यदि ॥[१]	यदा ॥[१] (भाग०सुबो० १०।२१।११।८)
३१	११	पुरोगाः[१]	पुरोगाः[१] (भाग० १०।३५।१५)
३४	५	करणात्	करणात्[२]
३४	६	(भाग०१०।२।१५)	(भाग० १०।३०।१५)
३६	१२	( )	(भाग०सुबो० १०।५।१७)
५०	२३	कुतश्चन	कुतश्चन[२]
५३	८	इत्याक्षेपार्थं	इत्याक्षेपार्थ
५७	२	एकान्तिना[१]	एकान्तिनः[२][१]
६३	१७	यदि[१]	यदि[१] (भाग०सुबो० १०।२१।११।८)
६४	६	संशयम	संशयम्
७६	३०	तपाव व	तपति
८८	१२	(भाग० १२।२५।२४)	(भाग० ११।२५।२४)
९०	१७	हसत्तरले[१]	हसत्तरलाचित-[१] (भाग० १०।३२।१२)
९२	२६	(सुबो० १०।२१।११)	(भाग०सुबो० १०।२१।११।७)
११७	३०	स्पृहणीमा	स्पृहणीया
१२४	१	तत्समान्	तत्समान

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीयमुनायै नमः ॥

श्रीमत्प्रभुचरणप्रणीता

श्रीयमुनाष्टपदी

नमो देवि यमुने ! नमो देवि यमुने ! हर कृष्ण-मिलनान्तरायम् ।
निजनाथ-मार्गदायिनि कुमारी*-कामपूरके† कुरु भक्तिरायम् ॥

श्रीमद्रघुनाथकृतश्रीयमुनाष्टपदीविवरणम्

यो गिरीन्द्रमधात्स्वस्य स्थितौ भक्तरिरक्षया ।
सप्ताहमवमत्येन्द्रं तं वन्दे वल्लभात्मजम् ॥१॥
या कलिन्दाचले चारु पतन्ती सङ्गता भुवि ।
स्वभर्तुर्भक्तप्रीत्यर्थं कालिन्दीं प्रणमामि ताम् ॥२॥
यस्याः सुशीतलतरङ्गितवारिसङ्गात् ; स्वकल्मषगणादपि सर्वे मुक्तिमवाप्नुवन्ति ।
निर्धूय कर्णकलुषं हरिभक्तिभाजः ; सा मां पुनातु यमुना निखिलार्थदात्री ॥३॥
यत्पयःपानतः प्रीतः प्रयच्छति निजं वपुः ।
कृष्णः कमलपत्राक्षो निजं ज्ञात्वा स्वयं हरिः ॥४॥
तत्तटे वसतां नित्यं तद्रजःसिक्तदेहिनाम् ।
मुक्तिं यस्या निजां भक्तिं प्रयच्छति मुहुर्मुदम् ॥५॥

अष्टपदीगीतेन यमुनां प्रार्थयितुं स्तोतुं चादौ नमस्यन्ति नमो देवि यमुने इति । हे देवि द्योतमाने श्रीकृष्णस्वरूपानन्देन स्वच्छन्दं क्रीडां कुर्वाणे वा । यमुने यच्छति निर्वर्तयति विविधतापम् इति यमुना । एतेन प्रार्थनोपयोगः सकल इति सूचितम् । तुभ्यं नमस्करोमि इत्यर्थः । नमस्कृत्य प्रार्थयन्ति हर कृष्ण-इति । कृष्णस्य मिलने सर्वमोहन-त्रिभङ्गललित-रासमण्डलमण्डन-स्वरूपस्य साक्षाद्भजनलक्षणसम्बन्धे जायमाने सति यदन्तरायितं तद् हर नाशय इत्यर्थः ।

न केवलम् अन्तरायापायसम्पादकत्वं, किन्तु साक्षात् तत्पदवीप्रदर्शकत्वमपि इत्याहुः निजनाथ-इति । हे निजनाथमार्गदायिनि ! हे कुमारीकामपूरके भक्तिरूपं रायं धनं कुरु मयि सम्पादय इत्यर्थः ।

निजोऽसाधारणः स्वकीयो नाथः श्रीकृष्णः तस्य मार्गदायिनी मार्गदातृत्वभावे । तत्र, मथुरातो गोकुलागमने प्रसिद्धमेव । अत एवोक्तं 'मार्गं ददौ सिन्धुरिव श्रियः पतेः' इति । अन्यदापि व्रजसुन्दरीभिः सह क्रीडायां पारावारागमनाय इति ज्ञापयितुं तत्सामर्थ्यम् उक्तम् ।

---

*पाठा० कुमारी. † पाठा० पूरक.

मधुपकुल-कलित-कमलावली-व्यपदेश-
धारितश्रीकृष्ण-निजभक्तहृदये ।
सततमतिशयित-हरिभावना-जात-तत्सारूप्य-गर्वितहृदये ॥ १ ॥
निजकुल-भव-विविध-तरुकुसुमयुत-नीरशोभया विलसदलिवृन्दे ।

यद्वा निजनाथमार्गस्तत्प्राप्त्युपायस्तत्सम्पादकत्वमेव तदुपासकानाम् इति । कुमारीणां नन्दव्रजकुमारीणां, कामो 'नन्दसुतः पतिर्भूयाद्' इति इच्छा, तं पूरयति समृद्धयति कामपूरः, तादृशं कं जलं यस्याः सा कामपूरका ।

यद्वा । पूरणं पूः तासां कामपूरणं कं सुखं यस्याः सा । कामान् पूरयति इति पक्षे कामपूरिकेति इत्यवशिष्ट पठनीयं, तदुक्तम् ,

मार्गे व्रजन्त्यो निजमण्डलीषु मध्ये स्थितं ताः सखि मन्यमानाः ।
अन्योऽन्यसम्बद्धभुजा विशङ्का जगुः प्रियं तद्रसभावमत्ताः ॥

'आप्लुत्याम्भसि कालिन्द्याः', 'कृष्णमुच्चैर्जगुर्यान्त्यः', 'कालिन्द्यां स्नातुमन्वहम्' इति । यद्वा । कुमारीति सम्बुद्ध्यन्तं पृथक् पदम् ।

सम्प्रति कमलसम्पत्तिमुद्दिश्य वर्णयन्ति मधुपकुल-इति मधुपानां कुलं समूहः तेन कलिता अन्तर्बहिर्व्याप्ता या कमलावली कमलपंक्तिः तद्व्यपदेशेन तद्रूपनिभेण धारितानि स्थापितानि श्रीकृष्णस्य निजा अनन्या ये भक्ताः । 'श्रीकृष्णयुतभक्त' इति पाठेऽपि अयमेवार्थः । तेषां हृदयानि हृदय-कमलानि यया, यस्याम् इति वा । यस्याम् इति पक्षे श्रीकृष्णेन इति कर्तृपदं ज्ञेयम् । अत्रायं भावः । यथा श्रीकृष्ण-भक्तानां हृदये घनश्यामावदातं रूपं निरन्तरं तिष्ठति, तद्रसानुभवार्थं गानभरेण बहिरप्यनुगृहीतुं तिष्ठति, एवमत्रापि बहिरन्तश्च मत्तभ्रमरैर्भगवद्विशिष्टभक्तहृदय-कमलान्येव धृतवती, कालिन्दीजलं भगवद्रसैकपूर्णमिति भक्ता अपि स्वहृदयानि तद्रसानुभवार्थं तस्यां स्थापयन्ति । स्वयमपि स्वान्तःस्थित-रसामृत-तरङ्गैः तद्धृदयानि शिशिरयितुमाप्लावयति । अतो युक्तमेव अन्योऽन्यसापेक्षत्वम् इति ।

भक्तानां हृदये भगवदुपलब्धिः त्वयि तु सर्वत्रापि इत्याहुः सततम् इति । सततं निरन्तरम् अतिशयिता अत्युत्कटा या हरेः सर्वदुःखहरणशीलस्य भावना चिन्तनं तया जातं सम्पन्नं तस्य हरेः सारूप्यं असितवर्णत्वम् । न केवलं रूपसाम्यं, किन्तु दुःखहरणत्वादिगुणसाम्यमपि तेनैव गर्वितं प्रख्यापितं निजहृदयं स्वान्तःकरणं यया, यस्या इति वा । अतिशुद्धस्फटिककाचादौ अन्तःस्थितनीलपीतादिकं बहिः भासते यथा तथा भगवानप्यन्तः स्थित्वा बहिरपि नैर्मल्यवशाद् भासते इति भावः । एतेन एतत्सेविनां भगवान् सुलभ इति ज्ञेयम् ॥ १ ॥

सम्प्रति नीरशोभाम् उत्प्रेक्षन्ते निजकुल-इति । निजे स्वकीये, कूले तीरे, भवा उत्पन्ना, ये विविधा नानाजातीयाः, तरवः कुरबकादिवृक्षाः, तेषां कुसुमैः निरन्तरं

स्मारयसि गोपीवृन्द-पूजित-सरसमीशवपुरानन्दकन्दे ॥ २ ॥
उपरिवलदमल-कमलारुण-द्युति-रेणु-परिमलित-जलभरेणामुना ।
व्रजयुवति-कुचकुम्भ-कुङ्कुमारुणमुरः स्मारयसि मारपितुरधुना ॥३॥
अविरजनि हरिविहृतिमीक्षितुं कुवलयाभिध-
सुभगनयनान्युशति तनुषे ।
नयनयुगमल्पमिति बहुतराणि च तानि,
रसिकतानिधितया कुरुषे ॥ ४ ॥

स्वयमेवापचीयमानैः पूर्णं मिश्रितं, यन्नीलनीरं तस्य शोभया सादृश्याद् ईशस्य श्रीकृष्णस्य, वपुः आनन्दघनविग्रहं स्मारयसि । तस्मिन् नीरे, किं विशिष्टे, विलसदलिवृन्दे । तत्तत्कुसुममकरन्दवशात् तत्र तत्र विलसन्ति क्रीडन्ति अलीनां वृन्दानि यस्मिन् । किंविशिष्टम् ईशवपुः ? गोपीनां वृन्दैः समूहैः, पूजितम् अर्चितं, तदेव सरसं भक्तेषु सार्द्रम् । हे आनन्दकन्दे आनन्दघने यमुने त्वमेवंभूतासीत्यर्थः । यद्वा, विलसदलिवृन्दे इत्यन्तं कालिन्दीविशेषणम् । तदा सप्तम्यन्तं नीरविशेषणं आनन्दकन्द इति ज्ञेयम् ॥ २ ॥

पद्मरागयुतवारिशोभां वर्णयन्ति उपरिवलद्-इति । उपरि ऊर्ध्वं वलन्ति वेष्टयन्ति यान्यमलानि कमलानि तेषां योऽरुणद्युतिः काश्मीरगौरपरागः तस्य परिमलः सुगन्धः संजातो यस्मिन् तादृशो यो जलभरः प्रवाहः, तेन अमुना, त्वं मारपितुः कामजनकस्य उरः श्रियैकरमणं वक्षःस्थलं स्मारयसि अभिज्ञापयसि । किंविशिष्टं वक्षः, व्रजयुवतीनां कुचकुम्भेषु यत्किंचित्तत्र परिरम्भालग्नेन अरुणम् । अत्र मारपितृपदेन कामिभावमापन्नानाम् एव एतत् स्मारकत्वं ज्ञेयम् । अत्यन्तरङ्ग-भक्तानां वा । अधुना-इति । वर्तमानप्रयोगो वक्तृभावाभिप्रायेण ज्ञेयः । उपरिचलद् इति पाठोऽपि ॥ ३ ॥

उत्फुल्लकैरवसम्पदं वर्णयन्ति अविरजनि इति । रागजनकत्वाद् रजनी रात्रिः रजन्यामधिकृत्य अविरजनि रात्रौ इत्यर्थः । तदानीं हरेः विहृतिं विहारम् ईक्षितुं नयनपथं कर्तुं कुवलयम् उत्पलं तदभिधानि तन्नामकानि यानि पुष्पाणि तान्येव सुभगानि सुन्दराणि नयनान्येव तनुषे तद्रूपेण आविष्करोषि । हे उशति ! कमनीये ! आचरण-विशेषणं वा सप्तम्यन्तं ज्ञेयम् । स्वल्पस्वरूपानभिज्ञानां पुरुषत्वेन व्यवहारो न तु अभिज्ञानम् इति भावः । तर्हि नयनानां द्वित्वं त्रित्वं वा दृष्टचरं पुष्पाणाम् अनन्तत्वात् कथं सर्वेषां तद्रूपत्वम् इत्यत आहुः नयनयुगम् इति । चतुर्दिक्कमनल-लीलावस्थल्यं विलोकितुं युगपदसमर्थम् अतः तानि नयनानि बहुतराणि अत्यन्तं बहूनि एव करोषि युगपद्दर्शनानुभवार्थम् । चकाराद् अतिसुन्दराण्यपि इति ज्ञेयम् । एवं करणे हेतुः रसिकता-इति । रसाभिज्ञा रसिकाः तेषां भावो रसिकता तस्या

रजनि-जागर-जनित-रागरञ्जित-नयन-पङ्कजैरह्नि हरिमीक्षसे ।
मकरन्दभर-मिषेणानन्दपूरिता सततमिह हर्षाश्रु मुञ्चसे ॥ ५ ॥
तटगतानेक-शुकसारिका-मुनिगण-स्तुत-विविधगुण-सीधुसागरे ।
सङ्गता सततमिह भक्तजन-तापहृति राजसे रास-रस-सागरे ॥६॥
रतिभर-श्रमजलोदित-कमल-परिमल-व्रजयुवतिजन-विहृति मोदे ।

निधिः पञ्चयकोषः तस्य भावाद् एवं कुरुषे । आत्मनेपदप्रयोगात् स्वार्थमेव करणम् । रात्रौ प्रफुल्ल-कैरवाणां नेत्रत्वम् उक्तम् ॥ ४ ॥

दिवा प्रफुल्लकमलानां नेत्रत्वम् आहुः रजनि-जागर-इति । रात्रौ अनिमेषदृग्भिः विहारवीक्षणाद् रजन्यां जागरणाज्जनितो यो रागो रक्तता तद्रञ्जितैः आरक्तवर्णयुक्तैः नयनकमलैः अह्नि दिवसे हरिमीक्षसे, तद्विकासमिषेण पश्यसि इत्यर्थः । किञ्च, तत्पुष्पेभ्यो गलन्मकरन्दस्य भरेण अतिशयेन तद्रूपमिषेण व्याजेन सततं निरन्तरं इह अस्मिन् प्रवाहे लीलावसरे वा हर्षाश्रु आनन्दाश्रु मुञ्चसे त्यजसि इत्यर्थः ॥५॥

ऐश्वर्यं निरूपयन्ति तटगत-इति । पारावारमध्यतटेषु गताः स्थिताः अनेके बहवो ये शुकसारिकाख्या मुनिगणाः मुनीनां सङ्घाः शुकसारिकेत्युपलक्षणम् । विहङ्गमात्रमपि तथैव । अत एवोक्तं 'प्रायः अमी मुनिगणा भवदीयमुख्याः,' 'प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन्' (भाग० १०।२१।१४) इत्यादिषु, तैः स्तुता नानागुणरूपामृतसागरो यस्याः सा । किञ्च, एवंविधा त्वं भक्तजनानां तापहृति तापहारके श्रीकृष्णे जलविहारादौ सङ्गता मिलिता सती राजसे दीप्यसे शोभसे इत्यर्थः । सततम् अविच्छेदेन इह वृन्दावने श्रीगोकुलादौ किंविशिष्टे श्रीकृष्णे, रासरससागरे रासोत्सव-महाकौतुकस्य समुद्रे अपारसद्रूपे ॥६॥

अतिरहस्यलीलाधारत्वं वर्णयन्ति रतिभर-इति । रतिभराद् यत् श्रमजलं तस्माद् उदितः प्रकटीभूतो यः कमलपरिमलः, पद्मिनीनां तादृशस्वेदत्वं शास्त्रसिद्धम् । यद्वा, वनस्थलरमणस्य भरेण अतिशयेन यः श्रमः तस्माद् यज्जलं स्वेदः तस्य उदितं उदयो येषु कमलेषु तत्परिमलो यासु व्रजयुवतिषु तत्कृत-जलविहृतेः विहारस्य मोदो हर्षो यस्याः । अत एवोक्तं 'ताभिर्युतः श्रममपोहितुम्' (भाग०१०।३३।२२) इत्यादि ।

यद्वा रतिभर-श्रमजलेन, उदितानि अवाप्तशोभातिशयेन प्रकाशितानि, यानि मुखकमलानि, रतिभर-श्रमजलाय तत्प्रक्षालनमार्जनाय, उदितं प्रकाशितं प्रसारितं यत्पाणिकमलं, तत्परिमलो यासु, इति वा । 'तासां रतिविहारेण श्रान्तानाम्' (भाग० १०।३३।२१) इत्युक्तत्वात् । किञ्च, क्रीडन्तीनां ताटङ्कस्य कर्णभूषणस्य चालनेन एव मुनिरस्ताः सम्यक् तिरस्कृताः सङ्गीतयुग्मदेन मुदिताः हृष्टाः ये मधुपाः भ्रमरमुख्याः तत्कृतौ विनोदौ दर्शनीयं कौतुकं वा यस्याम् । 'गन्धर्वपालिभिरनुद्रुत (भाग० १०।३३।२२) इत्युक्तत्वात् मधुपाः स्वयं

ताटङ्कचलन-मुनिरस्त-सङ्गीतयुत-मदमुदित-मधुपकृत-विनोदे ॥७॥
निज-व्रजजनावनात्त-गोवर्धने राधिका-हृदयगत-हृद्य-करकमले ।
रतिमतिशयितरस-विट्ठलस्याशु कुरु वेणुनिनदाह्वान-सरसे* ॥ ८ ॥
व्रज-परिवृढ-वल्लभे ! कदा त्वच्चरण-सरोरुहमीक्षणास्पदं मे ।
तव तटगत-वालुकाः कदाहं सकल-निजाङ्ग-गता मुदा करिष्ये ॥
वृन्दावने चारुबृहद्वने मन्मनोरथं पूरय सूरसुते ।
दृग्गोचरः कृष्णविहार एव स्थितिस्त्वदीये तट एव भूयात् ॥

नायिकाभिमानेन स्वगुणप्रदर्शनाय तासां श्रवणगतनीपगतस्य गुञ्जारवं कुर्वाणा निवृत्ता नाऽभवन् तदा भगवद्वचनश्रवणान्तरायत्वात् ताटङ्कचालनमात्रेण एव मुनिरस्ताः, कुतस्ताटङ्कात्† न मन्त्रोऽपि इति तात्पर्यम् ॥ ७ ॥

निजप्रार्थनामाहुः निज-इति । 'तस्मान् मच्छरणं गोष्ठम्' (भाग० १०।२५।१८) इत्युक्तत्वात् । निजा अनन्या ये व्रजजनाः इत्युपलक्षणं पश्वादिकम् अपि ज्ञेयम् । तेषाम् अवनाय रक्षणाय आत्तः ऊर्ध्वं स्वीकृतो गोवर्धनो येन तादृशे श्रीगोवर्धनेशे श्रीविट्ठलस्य रतिम् अभिमतां प्रीतिं कुरु सम्पादय । किंविशिष्टे ईशे राधिका-हृदयगत-हृद्य-करकमले राधिकाया हृदये उरसि गतं प्रविष्टं हृद्यं सकलताप-नाशकमभिमतं एतादृशं करकमलं यस्य तस्मिन् । किंविशिष्टस्य विट्ठलस्य अति-शयितरसस्य, अतिशयित उत्कटो रसो यस्मिन् अतिशयितरसविट्ठलस्य इति कर्मधारयः । पुनः किंविशिष्टे ईशे वेणुनिनदाह्वान-सरसे वेणोः निनदेन तत्कृत-गीतेन आह्वानं सरसं कर्णे‡ रसोत्पादकं यस्य । यद्वा, वेणुः निनदः आह्वानं च एतत्त्रयं सरसं यस्य ॥ ८ ॥

श्लोकाभ्यां प्रार्थनमाहुः व्रज-परिवृढ-वल्लभ-इति । हे व्रजपतिप्रिये ! तव चरण-कमलं, मे मम, ईक्षणास्पदं दृग्गोचरं, कदा भविष्यति इति शेषः । किञ्च, तव तीरस्थिता वालुका अहं निजाङ्गलग्नाः स्वदेहगताः । निरन्तरं त्वत्तीरस्थितो इदं भवतीति सूचितम् ।

वृन्दावने चारुबृहद्वने सकलशोभाढ्ये महावने यद्यत् ममाभीष्टं तत्तत् पूरय सम्पादय । हे सूरसुते सरणस्वभावतनये ! अनेन इष्टप्राप्तिः ज्ञापिता । अभीष्टं यत् तदाहुः दृग्गोचरः दर्शन-विषयः, कृष्णविहार एव अस्तु । अपरिकररसापि मम त्वत्तीर एव स्थितिः अस्तु ॥ यत्प्रसादतः स्यान्नृहरिताङ्कुर-सम्भवः । भव-ताप-निवृत्तिश्च कालिन्दीं तामुपास्महे ॥ इति ।

इति श्रीमद्वल्लभनन्दनचरणैकशरणश्रीरघुनाथविरचितं श्रीयमुनाषट्पदीविवरणं सम्पूर्णम् ।

---

* अयं पाठः श्रीरघुनाथकृतविवरणानुसारी 'सरसे' इति तु पूर्वमुद्रितपाठः ।
† पूर्वमुद्रितपाठः 'कुतस्तटाङ्का (?)' इति । ‡ 'करणे' इति पूर्वमुद्रितपाठः ।

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

गोस्वामिश्रीरघुनाथविरचितम्

श्रीयमुनाष्टकम्

यया तमीशवंशजः समाश्रितो बृहद्वनम् ; मदच्छलज्जल-प्रभूत-वीचिविभ्रमा मिषात् ।
तदङ्घ्रिकञ्ज-भक्तिमुत्तमां मुहुर्ममार्पयत् कलौ कलिन्दनन्दिनी कृपाकुलं करोतु नः ॥१॥

यदम्बुपानमात्रतोऽतिभक्तिमुक्तचेतसाम् ; कृतान्तसाध्वसो निजस्वभावतः कृपायुता ।
प्रयाप्य धर्मराजतो महद्भयं निवर्त्य सा ; कलौ कलिन्दनन्दिनी कृपाकुलं करोतु नः ॥२॥

यदीयनीरकेलितो दधार नन्दनन्दनः ; समस्तसुन्दरीजने स्वभावमद्भुतं मुदा ।
परस्परावलोकनं विवर्धयन् मुहुःस्मितः ; कलौ कलिन्दनन्दिनी कृपाकुलं करोतु नः ॥३॥

यदंघ्रि-फुल्लकञ्ज-सेवन-प्रभावतः सदा ; समस्तकल्मषाङ्कितं पुनाति सा जगत्त्रयम् ।
विरिञ्चिपारिसङ्गमं प्रबोधयत् सुखप्रदम् ; कलौ कलिन्दनन्दिनी कृपाकुलं करोतु नः ॥४॥

यया(ऽ)ग्रदत्र दूरतो ज्वलन्ति, मन्मदः सदा ; वसन्ति नन्दनन्दने दृढा रतिश्च जायते ।
महाष्टसिद्धिदाप्यशेषघोरपापपङ्कभयात् ; कलौ कलिन्दनन्दिनी कृपाकुलं करोतु नः ॥५॥

यदद्भुतो विनिःसृतस्य पापिनोऽपि शोभया ; जगत्त्रयं विमोहितं तदीयकान्तिपुञ्जयः ।
प्रफुल्लसारसा प्रभूतरुद्रदेवसंस्तुता ; कलौ कलिन्दनन्दिनी कृपाकुलं करोतु नः ॥६॥

यदीयभक्तसेवने कृते हरिः प्रसन्नताम् ; जगाम गोपिकापतिः समस्तकामदायिनी ।
तदम्बु-मध्य-खेलन-प्रभूत-भाव-भञ्जितः ; कलौ कलिन्दनन्दिनी कृपाकुलं करोतु नः ॥७॥

यदन्तिकस्थ-वालुकाः प्रयान्ति यत्र भूतले ; गृहे गृहे वसत्यसौ हरिस्तदन्यगस्य सा ।
यदा तदा तदैव तत्र भक्तवृन्दवन्दिता ; कलौ कलिन्दनन्दिनी कृपाकुलं करोतु नः ॥८॥

हरिप्रिये तवाष्टकं सदा पठेत् स शुद्धधीर्य एव गोकुलाधिपस्य लेढि मङ्गलं शुभम् ।
पुनः प्रयाति तत्सुतं तटस्थ-रासमण्डलस्थितस्त्रिभङ्गिमोहनं दधाति तद्विचेष्टितम् ॥९॥

इति श्रीरघुनाथ-विरचितम्

श्रीयमुनाष्टकम्

सम्पूर्णम् ।

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

श्रीहरिरायचरणप्रणीता

श्रीयमुनाविज्ञप्तिः

कृष्णां कृष्णसमां कृष्णरूपां कृष्णरसात्मिकाम् ।
कृष्णलीलामृतजलां कृष्णसम्बन्धकारिणीम् ॥१॥

कृष्णप्रियां कृष्णमुख्यरससङ्गमदायिनीम् ।
कृष्णक्रीडाश्रयां कृष्णपदवीप्रापिकामपि ॥२॥

कृष्णस्थितां कृष्णवासहृदयां कृष्णमातृकाम्* ।
कृष्णप्रियाप्रियां कृष्णस्थायिभावसमुद्भवाम् ॥३॥

कृष्णैकमिलनस्थानभूतां कृष्णसुखार्थिनीम् ।
कृष्णगोपीसहचरीं कृष्णसम्मानवर्धिनीम् ॥४॥

कृष्णकार्यपरां कृष्णलीलास्थलविशोधिकाम् ।
कृष्णक्रीडाकुङ्कुमादियुतां कृष्णरसान्तराम्** ॥५॥

कृष्णगोपीपूज्यदेवीं कृष्णव्रतफलप्रदाम् ।
कृष्णलीलार्थमायातां कृष्णनीरमिषद्द्रुताम् ॥६॥

कृष्णपादस्पर्शकामां कृष्णपानसतर्षिताम् ।
कृष्णासक्तां† कृष्णभक्तां कृष्णप्रीति‡प्रवर्धिनीम् ॥७॥

कृष्णाङ्घ्रिरेणुबहुलां कृष्णसेवकसम्प्लुताम् ।
कृष्णभावविरोधिस्वदासप्रकृतिनाशिनीम् ॥८॥

नमामि यमुनां कृष्णतुर्यप्रियतमामहम् ।
निजाचार्यपदाम्भोजदासे भावं प्रयच्छतु ॥९॥

इति श्रीहरिदासोक्ता

श्रीयमुनाविज्ञप्तिः

समाप्ता

---

*पाठा० कामुकाम् । **पाठा० रसातुराम् । †पाठा० कृष्णकृष्णां ।
‡पाठा० कृष्णभक्तकृष्णप्रीति- ।

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

गोस्वामिश्रीदेवकीनन्दनाचार्यविरचितम्

श्रीयमुनाष्टकम्

या गोकुलागमन-सम्भ्रम-दत्तमार्गा ; कृष्णाय शौरिमुदकैरविभावली ।
स्प्रष्टुं तदङ्घ्रिकमलेऽभवदुत्तरङ्गा ; सा मन्मनोरथशतं यमुना विधत्ताम् ॥१॥
या नन्दसूनु-मुरलीरव-लोलबोधद्-भाव-प्रभाव-गलदम्बु-पराबमाऽद्भुतम् ।
उन्मीलिताब्जनयनाऽऽप्लुतकुड्मि-वीचिभिः ; सा मन्मनोरथशतं यमुना विधत्ताम् ॥२॥

या गोकुलेश-भूषिताङ्गुक-लज्जितान्तरा कण्ठलग्न-नव-नन्दकुमारिकाणाम् ।
कम्पोद्गमं विदधती न विलम्बमैच्छत् ; सा मन्मनोरथशतं यमुना विधत्ताम् ॥३॥

या राधिकाऽधर-पयोधर-कामुकाय ; तस्मै निकुञ्जनिलयं स्वकरैश्चकार ।
स्वच्छोच्चितातिमृदु-वालुकभू-वितानं ; सा मन्मनोरथशतं यमुना विधत्ताम् ॥४॥

या रासकेलि-जनित-श्रमहारि-वारि-क्रीडासु घोषवनितोच्छलदम्बुराशिः ।
नन्दात्मजं सुखयति स्म कृताभिषेकं सा मन्मनोरथशतं यमुना विधत्ताम् ॥५॥

या चञ्चलचञ्चलदृशः समयं व्रजस्त्रीः ; पीनोन्नतस्तनतटीः परिरभ्य नन्दनम् ।
पारे नयन्तमुपलक्ष्य हरिं समासीत् ; सा मन्मनोरथशतं यमुना विधत्ताम् ॥६॥

या विभ्रमद्भ्रमरपङ्क्ति-सदङ्गसङ्ग-लग्नाङ्गराग-रुचिर-द्युति-दामनेत्री ।
तत्पादपङ्कज-रजोऽर्चिताङ्गदात्री ; सा मन्मनोरथशतं यमुना विधत्ताम् ॥७॥

या सेविताऽभिहतमशेषजनैर्व्रजेश-पादाम्बुजेऽतिरतिमाशु ददाति तेभ्यः ।
संस्तूयते शिव-विरञ्चि-मुनीन्द्रवर्यैः ; सा मन्मनोरथशतं यमुना विधत्ताम् ॥८॥

उक्तं मयाऽष्टकमिदं तव सूर्यसुते ! यः सादरं त्वयि मनः प्रपठेन्निधाय ।
तस्याचला व्रजपती रतिराविरास्तां ; नित्यं प्रसीद मयि देवकिनन्दनेऽपि ॥९॥

इति श्रीदेवकीनन्दनकृतम्

श्रीयमुनाष्टकम्

सम्पूर्णम् ॥

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

गोस्वामिश्रीजीवनजीविरचिता

श्रीयमुनाचतुष्पदी

जयति तरणितनया सदा कृष्णहृदयकुसुमा सुरासुर-मनुज-प्रथित-स्वसुमा ।
तरल-लहरी-लाल-लुलित-कलि-कलित-मति-पतित-तति-निरय-समुद्धरणकामा ॥१॥
कमलविलसानिलय-कमलनयनायन-पृथु-सुखद-शुचि-सरणि-नीलधामा ।
सुरद्रुम-कुसुम-नूतन-नवकञ्ज-मकरन्द-रसपायि-मधुपाभिरामा ॥२॥
कृतसलिलमज्जन-नमज्जन-मनो-हृत-भ्रमनिचय-भवजलावर्तदामा ।
तटनिकट-विलसल्लतोच्छलित-विमलजल-फेनकुल-मिताऽपि द्विधा श्यामा ॥३॥
कृष्णजीवनवहा त्वमसि प्रतिदिनमतस्तत्पादवर्तिनी खलु सदामा ।
मम ममेति विचिन्त्य मनसि घनतमसा; मामवतु भव-भयान्धौरिदामा ॥४॥

इतिश्रीमद्गोकुलोत्सवात्मजजीवनजीविरचिता

श्रीयमुनाचतुष्पदी

समाप्ता ॥

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

पण्डितश्रीगदाधरविरचिता

श्रीयमुनाद्वादशपदी

जयति यमुनाभिधा जगति जगदम्बा । पुण्यपयसानुकम्पित - कलिकदम्बा ॥१॥
सुभग - नवजलज* - जलपूरा । निखिल-कलिकलुषौघ-निदलनशूरा ॥२॥
धर्म-धन-कामादि-कामितविधायिनी । तीरभुवि तनुमुचे परमपददायिनी ॥३॥
कल्पतरु-निकर-सङ्कुलितमणिकूला । स्वच्छसलिल - निराकृतमुकुतूला ॥४॥
स्नानकृन्निज-सहजमल-तिरस्कारिणी । पानकारिणो† मनःशुद्धिविस्तारिणी ॥५॥
सुकृति-कृति-सुकृतिचय-सञ्चयविवर्धिनी । कृष्णचरणाम्बुजे रतिरससमर्चिनी ॥६॥
कमलकुल-लोचना मधुपकलिकज्जला । हासनिभ-हंसगण-सञ्चार-समुज्ज्वला ॥७॥
तटनिकट-फलवन-विशदपटधारिणी । कोकरव-बालमलफेनभर-हारिणी ॥८॥
विलसद्वृन्दावन-परागभर-रञ्जिता । बहुनिरहारिणी सतामरमणसिञ्जिता ॥९॥
भृङ्गभ्रुकुटीभङ्ग-भूषितामुखहा । परमवत्सलतया सर्वजनसुखहा ॥१०॥
सारसनिनादनिभ-रसनानिनादिनी । सुखद-शीकर-भर-स्मरजनाह्लादिनी ॥११॥
सप्ताब्धिभेदिनी सत्त्वपरमुद्भवा । हरिचरणरत-गदाधर-विरचितस्तवा ॥१२॥

इति श्रीगदाधरपण्डितविरचिता

श्रीयमुनाद्वादशपदी

समाप्ता

---

*पाठा० सजल (?). †पाठा० पानकारिणी (?).

श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतम्
प्रथमम्
श्रीयमुनाष्टकम्

मुरारि-काय-कालिमा-ललाम-वारिधारिणी ;तृणीकृतत्रिविष्टपा त्रिलोक-शोकहारिणी ।
मनोऽनुकूल-कूल कुञ्जपुञ्ज-धूतदुर्मदा ; धुनोतु नो मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥१॥
मलापहारि-वारिपूर-भूरिमण्डिताऽमृता ; भृशं प्रपातक-प्रवञ्चनातिपण्डिता निशा ।
व्रजेशनन्दनाङ्गसङ्ग-रागरञ्जिता हिता ; धुनोतु नो मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥२॥
लसत्तरङ्गसङ्ग-धूत-भूतजात-पातका ; नवीनमाधुरीधुरीण-भक्तवृन्द-चातका ।
तटान्तवास-दास-हंससंसृताऽतिकामदा ; धुनोतु नो मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥३॥
विहाररासखेद-भेद-धीर-तीरमारुता ; गता गिरामगोचरे यदीयनीरचारुता ।
प्रवाह-साहचर्य-पूत-मेदिनी-नदी-नदा ; धुनोतु नो मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥४॥
तरङ्गसङ्ग-सैकतान्तरान्तिताऽसितोदका ; शरन्निशाकरांशु-मञ्जुमञ्जरी-सभाजिता ।
भवार्चन-प्रचारुणाम्बुना धुनानशारदा ; धुनोतु नो मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥५॥
जलान्तकेलिकारि-चारुराधिकाङ्गरागिणी ; स्वभर्तुरन्यदुर्लभाङ्गसङ्गतांशभागिनी ।
स्वदत्तसुप्ति-सप्तसिन्धु-भेदनातिकोविदा ; धुनोतु नो मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥६॥
जलच्युताच्युताङ्गराग-लम्पटालिशालिनी ; विलोलराधिकाकचान्त-चम्पकालिमालिनी ।
सदावगाहनावतीर्ण-भर्तृ-भृत्यनारदा ; धुनोतु नो मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥७॥
सदैव नन्दसूनु-केलिशालि-कुञ्ज-मञ्जुला ; तटोत्थफुल्लमल्लिका-कदम्ब-रेणुसूज्ज्वला ।
तथा जलावगाहिनां नृणां भवाब्धिपारदा; धुनोतु नो मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥८॥

इति श्रीआद्यशङ्कराचार्यकृतं प्रथमम्
श्रीयमुनाष्टकम्
सम्पूर्णम्

श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतम्
द्वितीयम्
श्रीयमुनाष्टकम्

कृपापारावारां तपनतनयां तापशमनीम् ;
मुरारिप्रेयस्यां भवभयदवां भक्तिवरदाम् ।
वियज्ज्वालान्मुक्तः श्रियमपि लभेत प्रतिदिनम् ;
सदा धीरो नूनं भजति यमुनां नित्यफलदाम् ॥१॥

मधुवनचारिणि ! भास्करवाहिनि ! जाह्नविसङ्गिनि ! सूर्यसुते !
मधुरिपुभूषिणि ! माधवतोषिणि ! गोकुलभीतिविनाशकृते !
जगदघमोचिनि ! मानसदायिनि ! केशवकेलिनिदानगते !
जय यमुने ! यमभीतिनिवारिणि ! सङ्कटनाशिनि ! पावय माम् ॥२॥
अयि मधुरे ! मधुमोदविलासिनि ! शैलविदारिणि ! वेगपरे !
परिजनपालिनि ! दुष्टनिषूदिनि ! वाञ्छितकामविलासपरे !
व्रजपुरवासिजनार्जित-पातकहारिणि ! विश्वजनाश्रयदे !
जय यमुने ! यमभीतिनिवारिणि ! सङ्कटनाशिनि ! पावय माम् ॥३॥
नवजलद-द्युतिकोटि-लसत्तनु-हेममयाभरणाञ्चितके !
तडिदवहेलि-पदाञ्चल-चञ्चल-शोभित-पीतसुचेलधरे !
मणिमयभूषण-चित्रपटासन-रञ्जित-गञ्जितभानुकरे !
जय यमुने ! यमभीतिनिवारिणि ! सङ्कटनाशिनि ! पावय माम् ॥४॥
शुभपुलिने ! मधुमत्त-यदूद्भव-रासमहोत्सव-केलिभरे !
उच्चकुलाचल-राजित-मौक्तिकहार-समाभृतरोदसिके !
नवमणिकोटिक-भास्कर-कञ्चुकिशोभित-तारकहारयुते !
जय यमुने ! यमभीतिनिवारिणि ! सङ्कटनाशिनि ! पावय माम् ॥५॥
करिवरमौक्तिक-नासाभूषण-वातचमत्कृत-चञ्चलिके !
मुखकमलामलसौरभ-चञ्चल-मत्त-मधुव्रत-लोचनिके !
मणिमयकुण्डल-लोल-परिस्फुरदाकुल-गण्डयुगामलके !
जय यमुने ! यमभीतिनिवारिणि ! सङ्कटनाशिनि ! पावय माम् ॥६॥
कलरवनूपुर-हेममयाञ्चित-पादसरोरुह-सारुणिके !
धिमि-धिमि-धिमि-धिमि-तालविनोदित-मानस-मञ्जुलपादगते !
तव पदपङ्कज-संश्रित-मानव-चित्त-सदाऽखिलतापहरे !
जय यमुने ! यमभीतिनिवारिणि ! सङ्कटनाशिनि ! पावय माम् ॥७॥
भवोत्तापाम्भोधौ निपतितजनो दुर्गतियुतो;
यदि स्तौति प्रातः प्रतिदिनमनन्याश्रयतया ।
हयाह्रेषैः कामं करकुसुमपुञ्जै रविसुताम् ;
सदा भोक्ता भोगान् मरणसमये याति हरिताम् ॥८॥

इति श्रीआद्यशङ्कराचार्यकृतं द्वितीयम्
श्रीयमुनाष्टकम्
सम्पूर्णम् ॥
॥ शमस्तु ॥

॥ श्रीहरिर्जयति ॥

श्रीयमुनाविंशतिः

कविरत्नभट्टश्रीगिरिधारिशर्मप्रणीता

पीयूषगर्व-परिहारि शिव-प्रसारि, संसारिलोक-कृतपातक-घातकारि ।
वल्गन्न-नीलनलिनावलि-कान्तिधारि, भास्वत्सुतो भवतु वारि विभूतये नः ॥१॥

सर्वस्वमौपनिषदं, तदकिञ्चनानामापद्धनं, त्रिजगतां सुकृतं समृद्धि ।
माहात्म्यमुज्ज्वलतमं व्रजवल्लभस्य, भास्वत्सुतो जयति मङ्गलमूलमम्भः ॥२॥

वृन्दावनावनि-सुधानिधि-नित्यसिद्धलीलैकसाक्षि मुनिचिन्तित-सिद्धिबीजम् ।
नक्तं दिवं भव-महामय-मूर्च्छितानां सञ्जीवनं जयति यामुनजीवनं तत् ॥३॥

यद्दृष्टमात्रमपि देहभृतामजस्रम् उत्क्षालयत्यखिलदुष्कलिकल्मषाणि ।
तन्नित्यसिद्ध-हरिकेलि-विलोकनैकसिद्धाञ्जनं जयति किञ्चन यामुनाम्भः ॥४॥

वन्दे कलिन्दतनुजातटलोल-विश्वपौनिन्यपावनमपर्वमदभ्रमम्भः ।
सद्यो निवर्हयति निर्जरराज-रत्नसौन्दर्यहार्यपि भवान्तरनीलिमानम् ॥५॥

तापानशातयति भूतमनाकरोति, दूरस्थ किल्बिषमिदं बलवाद्दधाति ।
नेत्राण्यमञ्जयति यत्तदिदं भवार्तिदिव्यौषधं जयति वारिजबन्धुजाम्भः ॥६॥

यस्मिन् मनागपि निमज्जनतो जनानां नश्यन्ति सर्वविध-तनयस्तदिहार्कजायाः ।
श्रेयांसि कल्पयतु किञ्चन चित्रसृष्टिनिर्माणकेलि-कुशलं विमलं जलं नः ॥७॥

तद्भूतलाश्रित-समीहित-पूरणैकचिन्तामणिर्मुनिजनमङ्गलभूतिहेतुः ।
उत्ताल-कालभट-तर्जन-भञ्जनैकपारङ्गमं विजयते मिहिरोद्भवाम्भः ॥८॥

किञ्चिद्विकल्पयतु न-कुशलं जलं तद्, देव्या दिवाकरभुवो नवनीतिहारि ।
यत्सेवनादहरहः परमस्य पुंसो पादारविन्द-पदवी न दवीयसी स्यात् ॥९॥*

---

*अद्यावधीयं श्रीयमुनाविंशतिरस्माभिरेतावत्येवोपलब्धा । (सम्पादकः) ।

संसार-दुर्दमदवानल-दग्धजीव-जीवातवे भगवतः पुरुषोत्तमस्य ।
हृत्कोषनिर्गतमिदं यमुनाभिधानमानन्दरूपममृतं सततं श्रयामः ॥ १० ॥

श्रीमन्मुकुन्दपरिचायनसुप्रवीणा सा देविका जयति वारिजबन्धुजायाः ।
निःश्रेयसोदयकृतेऽपि यदीयसङ्गाद् गङ्गा गुणौरवनिविश्रुतत्वमुपाससाद ॥ ११ ॥

कल्याणिनी जयति नीरदपुञ्जमञ्जुदेहा दिवाकरसुता जलवेणिका सा ।
या भाति भक्तकुलकल्पमहाभिषेकैर्गङ्गानदीसङ्गतसुवर्णतरङ्गिणीव ॥ १२ ॥

सा देवता कमलबान्धवसम्भवा नो निःश्रेयसं स्वपदि शाश्वतिकं तनोतु ।
मन्ये यमाद्भवति या दुरितावलीढान् रोषादनामिलविभालितयोषिहस्तैः ॥ १३ ॥

या नीलनीरुहसखाश्रयबन्धुरापि दुष्कालकल्मषमषीमनिशं प्रमार्ष्टि ।
श्रीमत्कलिन्द-गिरिशेखर-पाति-लीलाधारा विघातयतु पातकजातकं नः ॥ १४ ॥

ते कल्पयन्तु कुशलं नवनीलकण्ठकण्ठोपमा रविभुवो विततास्तरङ्गाः ।
ये मङ्गलाद्रविरुचां बहुरङ्गभाजां पौरन्दरस्य धनुषः श्रियमुद्वहन्ति ॥ १५ ॥

नौकावली-ध्वजचयध्वनिमिश्रवाद्य-घण्टाटणत्कृतिविपूरित-लोककोषम् ।
दैनंदिनं विजयते कुसुमाञ्चितं तन्नीराजनोत्सवविधानकमर्कसूनोः ॥ १६ ॥

तेषां न दुर्गमतमा अपि देशकालसम्भूतदोषनिचया निकटीभवन्ति ।
यद्भावतो भगवतो दयिता चतुर्थी देवी दिवाकरभवा शरणीकृता यैः ॥ १७ ॥

निष्किञ्चना अपि जना यदुनाथकुञ्जपुञ्जेषु किञ्चन सुदुर्लभमाप्य*वस्तु ।
कालं सुदुर्जयमपि स्ववशे विधाय साम्राज्यमैन्द्रमपि नात्मदृशा स्पृशन्ति ॥ १८ ॥

यत्नेन केचन जना विविधागमालि-निर्दिष्ट-साधनशत-प्रवणा भवन्तु ।
निःसाधना ननु वयं तु समग्रसिद्धिबीजं दिवाकरभुवं शरणं श्रयामः ॥ १९ ॥

तत्पुण्यचिन्तनविधौ मनसे चिरावकाशं दिशन्ति सुरपत्तनवासिनोऽपि ।
ये यामुने परिसरे विहिताधिवासाः श्रीगोविन्ददिव्यचरितानि शृण्वन्ति सन्तः ॥ २० ॥

आवेदितोऽलवरपत्तनवासभाक्श्रीभट्टान्वये जनिजुषा कविकिङ्करेण ।
सौरभ्यमावहतु किञ्चन हृद्यपद्यपुष्पाञ्जलिश्चरणयोस्तरणेः सुतायाः ॥ २१ ॥

इति श्रीकविकिङ्करोपाह्वभट्टश्रीगिरिधारिशर्मप्रणीता
श्रीयमुनाविंशतिः
समाप्ता ॥

---

* 'सुदुर्लभमाप' इति पूर्वमुद्रितपाठः ।

श्रीयमुनाजीके पद

१

प्रिय संग रंगभरि करि कलोलें ।
सबनको सुखदेन, पियसंग करत सेन; चितमें तब परत चैन, जबहीं बोलें ।
अतिहि विख्यात, सब बात इनके हाथ; नाम लेत कृपा करें अतोलें ।
दरस करि परस करि ध्यान हियमें धरें; सदा ब्रजनाथ इन संग डोलें ।
अतिहि सुख करन, दुख सबनके हरन; एही लीनो पन्न है अकोलें ।
ऐसी यमुने जान, तुम करो गुन गान; रसिक प्रियतम पाये नग अमोलें ॥

२

ध्यान सुखधाम जहाँ नाम इनके ।
निशदिना प्राणपति आय हियमें बसे; जोइ गावे सुजस भाग्य तिनके ।
येही जगमें सार, कहत बार बार; सबनके आधार, धन निर्धनके ।
लेत यमुने नाम, देत अभयपद दान; रसिक प्रीतम पिया बस्यु इनके ॥

३

कहत श्रुतिसार निर्धार करिके ।
इन बिना कौन ऐसी करे हे सखी; हरत दुख द्वंद्व सुखकंद बरखे ।
ब्रह्मसंबन्ध जब होत या जीवको; तबहिं इनकी भुजा बाम फरके ।
दौरि करि सोर करि जाय पियसों कहे; अतिहि आनन्द मनमेंजु हरखे ।
नाम निर्मोल नग ले कोउ ना सके; भक्त राखत हिये हार करके ।
रसिक प्रीतमजूकी होत जापर कृपा; सोई श्रीयमुनाजीको रूप परखे ॥

४

नैन भरि देखी अब भानुतनया ।
केलि पियसों करे, भ्रमर तबहीं परे; श्रमजल भरत आनंद मन या ।
चलत टेढ़ी होय, लेत पियको मोहि; इन बिना रहत नहि एक छिन या ।
रसिक प्रीतम रास करत श्रीयमुना पास; मानो निकुंजनकी हैजु धन या ॥

५

श्यामसंग श्याम ह्वै रही श्रीयमुने ।
सुरत-श्रम-बिंदुते सिन्धुसी बढ़ि चली; मानो आतुर अली रही न भवने ।
कोटि कामहिं वारों, रूप नैनन निहारों; लाल गिरिधरन संग; करत रमने ।
हरखि गोविंद प्रभु निरखी इनकी ओर मानो नवदुलहनी आई गवने ॥

६

श्रीयमुनासी नाहीं कोउ और दाता ।
जो इनकी शरण जात है दौरिके, ताहिको तेहि छिन करत सनाथा ।
एहि गुन गान रसखान रसना एक, सहस्र रसना क्यों न दई विधाता ।
गोविंद प्रभु तन-मन-धन वारने, सबहीको जीवन इनहीके जु हाथा ॥

७

श्रीयमुना अस जगतमें जोइ गावे ।
ताके आधीन ह्वै रहत है प्राणपति; नैन अरु बैनमें रस जु छावे ।
वेद-पुरानकी बात यह अगम है, प्रेमको भेद कोउ न पावे ।
कहत गोविंद श्रीयमुनाकी जापर कृपा; सोई श्रीवल्लभकुल शरण आवे ॥

८

चरण-पंकजरेणु श्रीयमुने जु देनी ।
कलियुग-जीव उद्धारण-कारन, काटत पाप सब धार पैनी ।
प्राणपति प्राणसुत आये भक्तन हित, सकल सुखकी तुमहो जु श्रेनी ।
गोविंद प्रभु बिना रहत नहिं एक छिनहु, अतिहि आतुर चंचल जु नयनी ॥

९

धायके जाय जो श्रीयमुना तीरे ।
ताकी महिमा अब कहाँ लग बरनिये; जाय परसत अंग प्रेम-नीरे ।
नित्यदिना केलि करत मनमोहन, प्रियासंग भक्तनकी हे जु भीरे ।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल; इन बिना नेक नहिं धरत धीरे ॥

१०

जा मुखते श्रीयमुना यह नाम आवे ।
तापर कृपा करत श्रीवल्लभ-प्रभु; सोई श्रीयमुनाजीको भेद पावे ।
तन-मन-धन सब लाल गिरिधरनको देके चरन जब चित्त लावे ।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल नैनन प्रगट लीला दिखावे ॥

११

धन्य श्रीयमुने निधि देनहारी ।
करत गुणगान अज्ञान अघ दूर करि; जाय मिलवत पिया प्राणप्यारी ।
जिन कोउ संदेह करो, बात चितमें धरो, पुष्टिपथ अनुसरो सुख जु कारी ।
प्रेमके पुंजमें, रास-रस-कुंजमें, ताहीं राखत रसरंग भारी ।
श्रीयमुने पत प्राणपति प्राण अरु प्राणसुत चहुँजन जीवपर दया विचारी ।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल प्रीतिके लिये अब संग धारी ।

१२

कृपा अपार सुख एक कहाँ लौं कहिये ।
तजो साधन भजो नाम श्रीयमुनाजीको, लाल गिरिधरनवर तबहिं पैये ।
परम पुनीत प्रीतकी रीति सब जानिके दृढ़ करि चरन-कमल जु गहिये ।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल, ऐसी निधि छांडि अब कहाँ जु जैये ॥

१३

चित्तमें श्रीयमुना निशिदिन जु राखो ।
भक्तके वश कृपा करत हैं सर्वदा, ऐसो श्रीयमुनाजीको है जु साखो ।
जा मुखते श्रीयमुने यह नाम आवे, संग कोटि अघ जाय ताको ।
चतुर्भुजदास अब कहत हैं सबनसों; ताते श्रीयमुने यमुने जु भाखो ॥

१४

प्राणपति विहरत श्रीयमुनाकूले ।
लुब्ध मकरंदके भ्रमर ज्यों बस भये; देखि रवि उदय मनो कमल फूले ।
करत गुंजार मुरली जु लै सांवरो, सुनत व्रज-वधू तन-सुधि जु भूले ।
चतुर्भुजदास श्रीयमुना-प्रेमसिन्धुमें, लालगिरिधरन अब हरखि झूले ॥

१५

वारवार श्रीयमुना गुणगान कीजे ।
एहि रसनाते भजो नामरस अमृत; भाग्य जाके हैं सोइ जु पीजे ।
भानुतनया दया अतिही करुणामयी, इनकी करि आस सब सदा ही जीजे ।
चतुर्भुजदास कहे सोई प्रभु पास रहे, जोइ श्रीयमुनाजीके रस जु भीजे ॥

१६

हेत करि देत श्रीयमुना वास कुंजे ।
जहाँ निशि-वासर रासमें रसिकवर, कहाँ लौं बरनिये प्रेम-पुंजे ।
थकित सरिता-नीर, थकित व्रज-वधू-भीर; कोउ न धरत धीर, मुरली सुनिके ।
चतुर्भुजदास यमुना-पंकज जानि, मधुपकी नाईं चित्त लाय गुंजे ।

१७

भक्तपर करी कृपा श्रीयमुने जु ऐसी ।
छांडि निज-धाम विश्राम भूतल कियो, प्रगट लीला दिखाई जु तैसी ।
परम परमारथ करत हैं सबनको, देत अद्भुत रूप आप जैसी ।
नन्ददास यों जानि दृढ़ करि चरण गहे, एक रसना कहा कहौं विशेषी ॥

१८

नेह कारन श्रीयमुना प्रथम आई ।
भक्तके चितकी वृत्ति सब जानहीं; ताहिते अतिहि आतुर जु धाई ।
जाके मन जैसी इच्छा हुती ताहि की, तैसी ही आय साध जु पुजाई ।
नन्ददास प्रभु तापर रीझि रहे, जोई श्रीयमुनाजीको जस जु गाई ॥

१९

ताते श्रीयमुने यमुनेजी गावो ।
शेष सहस्रमुख निशिदिन गावत, पार नहिं पावत ताहि पावो ।
सकल सुख देनहार, ताते करो उच्चार, कहत हौं बारबार जिन भुलावो ।
नन्ददासकी आस श्रीयमुने पूरन करी, ताते घरी-घरी चित्त लावो ॥

२०

भाग्य सौभाग्य श्रीयमुना जु देई ।
बात लौकिक तजो पुष्टि यमुना भजो; लालगिरिधरनवर तब मिलेई ।
भगवदीय संग करि, बात इनकी लहै, सदा सान्निध्य रहे केलिमेई ।
नन्ददास जापर कृपा श्रीवल्लभ करें, ताके श्रीयमुना सदा बस जु होई ॥

२१

नाम महिमा ऐसो जो जानो ।
मर्यादादिक कहे लौकिक सुख लहे, पुष्टिपथ निश्चय जु मानो* ।
स्वाति जलबिन्दु जब परत है जाहिमें, ताहिमें होत तैसो जु मानो ।
श्रीयमुना कृपासिन्धु जानि, स्वाति-जल बुंद मानि, सूर गुण पूर कहाँ लौं बखानो ॥

२२

भक्तको सुगम श्रीयमुने अगम औरें ।
प्रातही न्हात अघ जात ताके सकल, जम हू रहत ताहि हाथ जोरें ।
अनुभवी बिना अनुभव कहा जानहीं; जाको पिया नहीं चित्त चोरें ।
प्रेमके सिन्धुको मरम जान्यों नहीं, सूर कहा भयो देह बोरें ॥

२३

फल फलित होय फलरूप जानें ।
देखीहू ना सुनी ताहीकी आपुनी; काहूकी बात कोऊ कैसे जु मानें ।
ताहीके हाथ निर्मोल नग दीजिये; जोई नीके करि परखि जानें ।
सूर कहे कूरते दूर बसिये सदा, श्रीयमुनाजीको नाम लीजे जु छानें ॥

---

*पुष्टिको पुष्टिपथ निश्चै मानो । (पाठान्तर) ।

२४

श्रीयमुनापति दासके चिन्ह न्यारे ।
भगवदीको भवत संग मिलि रहत है; जाके हिये बसत प्राण प्यारे ।
गूढ़ यमुने बात सोई अब जानिये, जाके मन-मोहन नैनतारे ।
सूर सुखसार निरधार वे पावहीं, जापर होय श्रीवल्लभ कृपा रे ॥

२५

श्रीयमुना रसखानिको शीष नाऊँ ।
ऐसी महिमा जानि भक्तको सुखदानि, जोइ माँगों सोई जु पाऊँ ।
पतित-पावन-करन, नाम लीनो तरन, दृढ़ कर गहि चरन कहूँ न जाऊँ ।
कुम्भनदास लालगिरिधरन मुख निरखत यही चाहत नहिं पलक लाऊँ ॥

२६

श्रीयमुना अगनित गुन गिने न जाई ।
श्रीयमुना तट रेणुते होत है नवीन तनु; इनके सुखदेनकी कहा करौं बड़ाई ।
भक्त माँगत जोई, देत तिहीं छिनु सो, ऐसोको करे प्रण निभाई ।
कुम्भनदास लाल गिरिधरन मुख निरखत, कहो कैसे करि मन अघाई ॥

२७

श्रीयमुनापर तन - मन - धन - प्राण वारो ।
जाकी कीरति विशद कौन अब कहि सकैं; ताहि नैननते न नेक टारो ।
चरण - कमल इनके जु चिन्तत रहो, निशिदिन नाम मुखते उच्चारो ।
कुम्भनदास कहे लाल गिरिधरन - मुख, इनकी कृपा भई तब निहारो ॥

२८

भक्तकी इच्छा पूरन श्रीयमुनाजी करता ।
बिना माँगे हू देत, कहाँ - लौं कहौं हेत, जैसे काहूको कोऊ होय धरता ।
श्रीयमुना-पुलिन रास, ब्रज-बधू लिये पास; मंद-मंद हासकर मनजु हरता ।
कुम्भनदास लाल गिरिधरन मुख निरखत, यही जिय लेखत श्रीयमुनाजु भरता ॥

२९

रासरससागर श्रीयमुनाजु जानी ।
बहुत धारा तन प्रतिछन नूतन, राखत अपने उरमें जु ठानी ।
भक्तको बहि भार, देत जु प्रान आधार, अतिहि बोलत मधुर-मधुर बानी ।
श्रीविठ्ठल गिरिधरनवर बस किये, कौनपें जात महिमा बखानी ॥

३०

भक्तप्रतिपाल जंजाल टारे ।
अपने रसरंगमें संग राखत सदा, सर्वदा जोई श्रीयमुने नाम उच्चारे ।
इनकी कृपा अब कहाँ लग बरनिये, जैसे राखत जननी पुत्र बारे ।
श्रीविट्ठल गिरिधरनसंग विहरत, भक्तको एक छिन ना बिसारे ॥

३१

श्रीयमुनाजीको नाम ले सोई सोहागी ।
इनके स्वरूपको सदा चिन्तन करत, काल न परत जाय नेह लागी ।
पुष्टिमारग-मरम अति ही दुर्लभ करम छाँड़ि सगरे परम प्रेम पागी ।
श्रीविट्ठल गिरिधरन ऐसो निधि भक्तको देत हैं बिना माँगी ॥

३२

कौनपे जात श्रीयमुनाजू बरनी ।
सबहीको मन मोहत मोहन पिया; सो पियाको मन है जु हरनी ।
इन बिना एक छिन रहत नहिं जीवनधन; ब्रजचन्द मन आनन्द करनी ।
श्रीविट्ठल गिरिधरन संग आय भक्तके हेत अवतार धरनी ॥

३३

श्रीयमुने तुमसी एक हो जु तुमही ।
करि कृपा दरस निसिवासर दीजिए; तिहारे गुन-गान को रहे उद्यम ही ।
तिहारे पायेते सकलनिधि पावहीं चरण-कमल चित्त-भ्रमर भ्रमहीं ।
कृष्णदासनि कहे कौन यह तप कियो, तिहारे ढिग रहत हैं लता द्रुम ही ॥

३४

ऐसी कृपा कीजिये लीजिये नाम ।
श्रीयमुने जगवंदिनी, गुण न जात काहू गिनी; जिनके ऐसे धनी सुन्दर स्याम ।
देत संयोगरस ऐसे पिय हैं जु बस, सुनत तिहारो सुजस, पूरें सब काम ।
कृष्णदासनि कहे भक्तहित कारने श्रीयमुने एकछिन नहि करें विश्राम ॥

३५

श्रीयमुनाके नाम अघ दूर भाजे ।
जिनके गुन सुननकों लालगिरिधरन पिय; आय सन्मुख ताके बिराजे ।
तिहि छिनु काज ताके सगरे सरे, जायके मिलत ब्रज-बधू समाजे ।
कृष्णदासनि कहे ताहि अब कौन डर, जाके ऊपर श्रीयमुनासी गाजे ।

३६

श्रीयमुनाको नाम लेहीजु ले है ।
जाकी लगन लगी नन्दलालसों सर्वस्व देके निकट रहे है ।
जिनही सुगम जानि, बात मनमेंजु मानि, बिना पहचानि कैसे जु पैहे ।
कृष्णदासनि कहे श्रीयमुना नाम-नौका; भक्त भवसिंधु ते यों ही तरिवे ॥

३७

श्रीयमुनाकी आस अब करत हैं दास ।
मन-कर्म-वचन करजोरि के माँगत, निशदिना राखिए, अपनेजु पास ।
जहाँ पिय रसिकवर रसिकनी राधिका; दोउ जन संग मिलि करत हैं रास ।
दास परमानन्द पाये अब ब्रजचन्द, देखि सिराने नैन मन्दहास ॥

३८

श्रीयमुनाके साथ अब फिरत हैं नाथ ।
भक्तके मनके मनोरथ पूरन करत; कहाँ लौं कहिये इनकी जु गाथ ।
विविध सिंगार आभूषन पहिरें, अंग-अंग शोभा बरनी न जात ।
दास परमानन्द पाये अब ब्रजचन्द, राखे अपने सरन गहे जु बात ॥

३९

श्रीयमुने ! पियको बस तुम जु कीने ।
प्रेमके फंदते गहि जु राखे निकट, ऐसे निर्मोल नग मोल लीने ।
तुम जु पठावत तहाँ अब धावत सदा तिहारे रस रंगमें रहत भीने ।
दास परमानन्द पाये अब ब्रजचन्द, परम उदार श्रीयमुनाजू दान दीने ॥

४०

श्रीयमुने सुखकारनी प्राणपतिके ।
जिन्हें भूलि जात पिय, तिन्हें सुधि करि देत; कहाँलौं कहिये इनके जु हितके ।
पियसंग गान करें उमंगि जो रस भरें, देत तारी कर लेत झटके ।
दास परमानन्द पाय अब ब्रजचन्द; एहि जानत सब प्रेमगतिके ॥

४१

श्रीयमुना करत कृपाको दान ।
जो कोऊ आवत दरस तिहारे, सबके राखत मान ।
कलिके जीव दोष-भंडारी, करत तिहारो पान ।
भये अनन्य सब ही जोर तें सुरमुनि करत बखान ।
जे जन हरिलीला अधिकारी, करत तिहारो गान ।
मैं मतिमन्द कहाँ लौं बरनों, रसिकदास जन जान ॥

४२

श्रीयमुना परम-कृपालु कहावे ।
दरशन ते अघ दूर जात है, हरि लीला गुन गावे ।
जो जन तेरे निकट बसत है नंद-नंदन रस पावे ।
जीवकृत्य देखत नहिं कबहीं, अपनो पथ दृढ़ावे ।
करतु अकरतु अन्यथा करतु, यह सुन मन ललचावे ।
रसिकदासको दास जानियो तातें यह जस गावे ॥

४३

श्रीयमुनाजी तुमसी और न दाता ।
तनु-नव दान करत सेवा-हित, सकुचि रहत विधाता ।
गोप मारि कीयो व्रत पूरन, कीरति जग विख्याता ।
रसिकदास जन सोइ माँगत है, करो कृपा मन माता ॥

४४

रसना एक गुण कहाँ लौं बखानो ।
सप्त-समुद्र कल्पद्रुम-लेखन, पत्रभूमि, तिहुँ लोककी आनो ।
श्रीवल्लभ व्रजवल्लभ जन वल्लभ सकल सुख खान्यो ।
मैं मतिमंद कहाँ लौं बरनौं, रसिकदासको दास ही जानो ॥

४५

तुम-सी और न कोई यमुनाजी,
करो हो कृपा मोहिं दीन जानके व्रजनिज वासो होई ।
प्रेम भजनमें करत विघ्नता संत सतावे सोई ।
ताको संग मोहिं स्वप्ने न दीजे, माँगें नैन भरि रोई ।
राखो चरण-शरण तरणि तनया, जन्म-आपदा खोई ।
यह संसार स्वारथको सबविध, सुत-बंधु-सगो न कोई ।
गृह-लंपट वारत अमृतमें विषया-रससों मोई ।
रसिक कहे दीन ह्वै माँगूं लहर समुद्र समोई ॥

४६

दीन जान मोरे दीजे (श्रीयमुनाजी) ।
नंदकुमार सदा वर माँगौं, गोपिनकी दासी मोहि कीजे ।
तुमतो परम उदार कृपानिधि चरण - शरण सुखकारी ।
तिहारे बस सदा लाड़िलीवर, ध्रुव तट क्रीडत गिरिधारी ।
सब व्रजजन विहरत संग मिलि, अद्भुत रास विलासी ।

तुम्हारे पुलिन निकट कुंजन द्रुम कोमल छवि सुवासी ।
ज्यों मंडलमें चंद्र विराजत, त्यों झिरकत व्रजनारी ।
श्रमजल सहित जो न्हात अति रस भरे, जल क्रीड़ा सुखकारी ।
रानीजीके मंदिरमें नित उठ पाव लाख, भुवन-काज सब कीजे ।
परमानन्द दास दासी ह्वै, नैनन यह सुख दीजे ॥

४७

प्रफुल्लित बन विविध-रंग झलकत यमुना तरंग; सौरभ घन मुदित अति सुहावनो ।
चिंतामणि कनकभूमि, छवि अद्भुत लता झूमि; शीतल मंद अति सुगंध, मरुत आवनो ।
सारस हंस शुक चकोर, चित्रित नृत्यत सुमोर; कल कपोत कोकिल कल, मधुर गावनो ।
युगल रसिकवर विहार, परमानंद छवि अपार; जयति चारु वृन्दावन परम भावनो ॥

४८

यह प्रसाद हौं पाऊँ (श्री यमुना जी) ।
तुम्हारे निकट रहौं निसिबासर, रामकृष्ण गुण गाऊँ ।
मज्जन करौं विमल जल पावन, चिंता कलेश बहाऊँ ।
तिहारी कृपा तें भानुकी तनया, हरि-पद प्रीति बढ़ाऊँ ।
बिनती करौं यह बर माँगौं, अधम संग बिसराऊँ ।
परमानन्द प्रभु सब सुख दाता, मदन गोपाल लड़ाऊँ ।

४९

श्रीयमुनाजीकी महिमा, मों बरनि न जाई ।
सूर-सुता घनश्याम वरण प्रफुल्लित रूप निकाई ।
श्री हरि गोप बधू द्विज सब, श्रीगोकुलके नरनाई ।
व्रजाधीश प्रभु आदि भक्तनको सकल सिद्धि सुखदाई ॥

५०

प्रिय संग रंग भरी करी विलासे ।
सुरत रस सिंधुमें अति ही हरखित भई, कमल ज्यों फूलत रवि प्रकाशे ।
तनतें मनतें प्राणतें सर्वदा, करत है हरि संग मृदुल हासे ।
कहत व्रजपति तुम सबन सों समझाय, मिटे यमत्रास इन ही उपासे ॥

५१

एक रसना गुण अपार क्यों कर बरनों ।
साधन सबै तजो, भजो इनके नाम, जाके स्मरण तें होइ भयो तरनो ।
एक मनमें निरधार करके करो, सदा तट इनके निकट रहनो ।
कहत व्रजपति तुम सबनसों समझाय, जपो हरिनाम और कुछ न करनो ।

५२

जगमें यही सार, भज बार-बार।
श्रीयमुनाजीको नाम जप निशिदिना, जातें उतरेगो भवसागर पार।
जा के भजन तें हरि हियामें बसें, करे कृपा सर्वदा, अपनी पितुमार।
कहत व्रजपति तुम सबनसों समझाय परो इनके चरन और नहीं अधार।

५३

श्रीयमुना यमुना नाम भजो।
हरखत करो अराधन इनको, और को पंथ तजो।
देहैं सकल पदारथ तुमको, इनके नाम रजो।
व्रजपतिकी अति ही प्यारी, तातें सकल शृंगार सजो॥

५४

निरखत ही मन अति आनंद भयो, देखि प्रभात प्रभाकर-कन्या।
जल परसत ही सकल अघ भाजे, ज्यों हरि देखि हरिणकी सिन्या।
और जीवनको औरनकी गति, मेरी गति तो तुम ही अनन्या।
व्रजपतिकी तुम अति ही प्यारी, तुम सबमते आछुनी धन्या॥

५५

जयति भानुतनया चरण-युगल वंदे।
जयति व्रजराज - नंदन - प्रिये ! सर्वदा, देत आनंद ज्यों शरद चंदे।
जयति सकल सुखकारिणी श्रीकृष्ण मनहारिणी श्रीगोकुल निकट बहत मन्दे।
जाके तट निकट हरि रास मंडल रच्यो तहं नृत्यत ताता थेई छन्दे।
जयति कलिन्दगिरि-नन्दिनि देत आनन्दनि, भक्तके हरत सब दुख द्वन्द्वे।
चित्तमें ध्यान धर मुदित व्रजपति कहे जयति जयति यमुने जयति नन्द नन्दे॥

५६

श्रीयमुनाजी परम कृपाल।
विनती करत तुरत सुनीजनी, भयी मोपे दयाल।
जो कोउ मज्जन करत निरन्तर तातें डरपत है यम काल।
व्रजपतिकी अति प्यारी कालिन्दी, सुमिरत होत निहाल।

५७

श्रीयमुनाजी पतित-पावन-करन।
प्रथम ही जब भयो दरसन कोटि कलिमल हरन।
पैठत ही जल, तरंग परसत मिटत जियकी जरन।

नाम उच्चरत शुद्ध वाणी, बुद्धि पोषण भरण।
उपजे उग्र वैराग्य जाको खैंचि लावत शरण।

५८

श्रीयमुनाजी पतित-पावन-करण।
प्रथम ही जब दियो दरसन, सकल पातक हर्यो।
जल-तरंग जब परस कीनो पय-पान-सों सुख भर्यो।
नाम सुमिरत, गई दुर्मति, कृष्ण-यश विस्तर्यो।
गोपिकन्या कियो मज्जन, लाल गिरिधर वर्यो।
सूर श्रीगोपाल सुमिरत सकल कारज सर्यो॥

५९

श्रीयमुनाजी तिहारो पुलिन मोंहि भावे।
सुर ब्रह्मादिक ध्यान धरत हैं सो सुपने नहि पावे।
बीच-बीच कुंज-सदन अति सुन्दर श्यामा-श्याम सुहावे।
चहुँ दिशि सकल फूल अति फूले, गुहि-गुहि कंठ धरावे।
कुसुमनके बिजना जो सँवारे, सखियन ब्यार ढुरावे।
सूरदास प्रभु सब सुखसागर दिन-दिन शोभा भावे॥

६०

(श्रीयमुनाजी) यह विनती चित धरिये।
गिरधरलाल-मुखारविंद-रति, जन्म-जन्म नित करिये।
विष-सागर-संसार विषय संगमते मोहि उद्धरिये।
काम-क्रोध-अज्ञान-तिमिर अति, उर अंतरते हरिये।
तुम्हारे संग बसौं निजजन संग रूप देख मन ठरिये।
गाऊँ गुण गोपाललालके, अष्ट-व्याधिते टरिये।
त्रिविध-दोष हरके, कालिन्दी, एक कृपा कर ढरिये।
गोविन्ददास यह वर मांगे, तुम्हारे चरण अनुसरिये॥

६१

श्रीयमुनाजी अधम उधारना मैं जानी।
जोवन संग श्याम घन सुंदर तीर त्रिभंगी ठानी।
गंगा चरण परस तें पावन हरशिर-चिकुर समानी।
सात समुद्र भेदि यों भगिनी हरि नख शिख लपटानी।
रास रमणमें नित्य परायण, प्रेमपुंज ठकुरानी।
आलिंगन चुंबन रस विलसत, कृष्ण पुलिन रजधानी।

ग्रीषम ऋतु सुख देत नाथ को संग राधिका रानी ।
गोविंद प्रभु रवितनया प्यारी भक्ति मुक्ति की खानी ।

६२

जयति श्रीयमुने प्रकट कल्प लतिके ।
अष्टसिद्धि अद्भुत वैभव सकल स्वजन विख्यात स्वाधीनपतिके ।
केलिश्रम सुरत पय रूप व्रजभूपको पुत्र पयपान दे विश्वमाता ।
अंग नूतन करत, पुष्टि तब अनुसरत त्रिदल रस केलिकी अमित दाता ।
रहत यमद्वार तें मुक्त सुख चारतें नाम द्वय अक्षर उच्चार कीने ।
उभय लीलाविष्ट व्रजप्रिय कुमारिका, तुर्यप्रिया वदत रसरंग भीने ।
अनावृत ब्रह्म तें सदावृत ह्वै रही, कनक छाया विटप श्याम वल्ली ॥
सदा प्रफुल्लित द्वारकेश अवलोक के नित्य आनंद आभीर पल्ली ।

६३

हतो एक पापी, हरि नामको निजापी, सदाको थापी देह तुलना तो तुलसी ।
परो है अनाथ, कोउ सगो नहीं साथ, जोबनमें ओछ रही सात पाँच पलकी ।
गोकुलबिहारीजूकी कृपा होति प्यारी नारी एक गागरी ले आयी ताकी छींट छलकी ।
देखि यमदूत सबै गये नरपति पास, जाके सिर बूंद परी, श्रीयमुना जल की ॥

६४

तिहारो दरसन मोहें भावे (श्रीयमुनाजी) ।
श्रीगोकुलके निकट बहुत हो लहरनकी छबि आवे ।
सुखदेनी दुखहरनी श्रीयमुनाजी जे जन प्रात होत उठि न्हावे ।
मदनमोहनजूकी खरी पियारी, पटरानी जु कहावे ।
वृन्दावनमें रास रच्यो है; मोहन मुरली बजावे ।
सूरदास प्रभु तिहारे मिलनको वेद विमल यश गावे ॥

६५

कालिन्दी के सब की प्यारी ।
जैसो मो पे काज करत हैं, तैसी तू कर मया तिहारी ।
यमुना यश की अवधि चहुँ जुग में, जम जेठी जग की महतारी ।
सूर कहे बिलम जिन मानो, कहा करूं मति प्रकृति हमारी ॥

६६

शरन प्रतिपाल गोपालरतिवर्धिनी ।
देत पतिपंथ, प्रिय-पंथ सनमुख करत, अतुल करुनामयी नाथ अंग अर्धिनी ।
दीनवत जानि रसपुंज - कुंजेश्वरी, रमत रस रास पिय संग निशि शर्दनी ।

भक्तिदायक सकल भवसिंधुतारिणी, करत विघ्ननाश जन अखिल अघमर्दिनी ।
रहत नंदसूनु तट-निकट निशिदिन सदा, गोप गोपी रमत मध्य रसकंदनी ।
कृष्ण तनवर्ण गुणधर्म श्रीकृष्णके कृष्णलीलामयी कृष्ण सुखकंदनी ।
पद्मजा पाय तुव संग ही मुररिपु, सकल सामर्थमयी पापकी खंडनी ।
कृपारसपूर वैकुंठ पदकी सीढी जगत् विख्यात शिव शेष शिरमंडनी ।
पर्यौ पदकमलतर और सब छांडके, देख दृग कर दया हास्य मुख मंदनी ।
उभय कर जोर कृष्णदास बिनती करे, करो कृपा अब कलिन्द गिरि नन्दिनी ॥

६७

जै जमुने जगवंदनी यश वेद ही गायो ।
जे जन तट सेवन करें सो हरिपद पायो ।
स्नान - दानकी कहा कहूं महिमा निरधारी ।
नाम लेत में तुरत ही पावे व्यभिचारी ।
सुखकरनी दुखहरनी प्रतीत पद वानी ।
कहत जन कृष्णदास सुरनर मुनि ज्ञानी ॥

६८

नमो तरणि तनया परम पुनीत जग पावनी, कृष्ण मन भावनी रुचिरनामा ।
अखिल सुखदायिनी, सब सिद्धि हेतु, श्रीराधिकारमण रतिकरण श्यामा ।
विमल जल, सुमन-कानन-मोदयुत, पुलिन अति रम्य, प्रिय व्रजकिशोरा ।
गोप - गोपी - नवल - प्रेम - रति - वर्धिता तट मुदित रहत जैसे चकोरा ।
लहरी भाव ललित वालुका, सुभग व्रजबाल नवपूरण रासफलदा ।
ललित गिरिवरधरण प्रिय कलिन्दनन्दिनी निकट कृष्णदास विहरत प्रबलदा ॥

६९

यमुना यह गोपालहि भावे ।
यमुना यमुना नाम उचारत, धर्मराज ताकी न बुलावे ।
जे यमुना को जान महातम वार वार प्रणाम करे ।
जे यमुना अवगाहत निशदिन त्रिविध ताप तनके जु हरे ।
पद्मपुराण कथा यह पावन धरणी प्रति वाराह कही ।
तीर्थमहात्म्य जान जगत - गुरु सो परमानंददास कही ॥

७०

कालिन्दी कलिकल्मष हरनी ।
रवितनया यम अनुजा श्यामा महा सुन्दरी गोविंद-घरनी ।
जय यमुने जय कृष्णवल्लभा, पतितनको पावन अवतरनी ।

शरणागतको देत अभय-पद जननी तजत जैसे सुतको करनी ।
शीतल मंद सुगंध सुधानिधि, ध्यावे परसपु उतरी धरनी ।
परमानंद प्रभु परम पावनी, युग युग साख निगम नित बरनी ॥

७१

जब लग यमुना गाय गोवरधन, जब लग गोकुल गांव गुसांई ।
जब लग श्रीभागवत कथारस, तब लग कलिमें कलियुग नाहीं ।
जब लग है सेवारस जगमें, नंद-नंदनसों प्रीति बढ़ाई ।
परमानंद तासों हरि प्रीतम श्रीवल्लभ चरण-रेणु जिन पाई ॥

७२

अति मंजुल जलप्रवाह मनोहर सुख अवगाहत विदित राजत अति तरणि-नंदिनी ।
श्याम वरण झलकत रूप, लोल लहर पर अनूप, सेवित संत मनोज वायु मंदिनी ।
कुमुद कुंज वन विकास, मंडित दिशि दिशि सुवास, गुंजत अलिहंसकोक मधुर छंदिनी ।
प्रफुल्लित अरविंद-पुंज, कोकिल कलसार गुंज, गावत अलि मंजु पुंज विविध वन्दनी ।
नारद शिव सनक व्यास, ध्यावत मुनि परम आस, चाहत पुलिनवास, सकलदुख-
निकंदिनी ।
नाम लेत कटत पाप, मुनि किन्नर ऋषिकलाप, करत जाप परमानंद, महाआनन्दिनी ॥

७३

जय जय श्रीसूर्यजा कलिन्दनन्दिनी ।
गुल्म-लता-तरु-सुवास, कुंज-कुसुम-मोद-मत्त, गुंजत अलि सुभग पुलिन, वायु मन्दिनी ।
हरि समान धर्मशील, कान्ति मंजु जलद-नील, तट नितम्ब भेदत नित गति उतंगनी ।
सिकता मानो मुक्ताफल, कंकणयुत भुज-तरंग, कमलको उपहार लेत पिय-
चरण-वंदनी ।
श्रीगोपेन्द्र-गोपीसंग, श्रम-जल-कण मिलत अंग, अति तरंग निरखि रस सुनन्दिनी ।
छीतस्वामी गिरवरधर, नंदनंदन आनंदकंद, यमुने जल दुरितहरण दुखनिकन्दिनी ॥

७४

दोऊ कूल खंभ, तरंग सीढ़ी, मानो श्रीयमुनाजी जगत-बैकुंठ नसेनी ।
अति अनुकूल कलोलनके मर मिले जात हरिके चरणन सुख देनी ।
जन्म जन्मके दुष्कृत दूर करनी, काटत कर्म धर्मधार पैनी ।
छीतस्वामी गिरधरजूकी प्यारी, साँवरे अंग कमल-दल-नयनी ।

७५

मेरे कुलकलमष सब भागे, देख प्रभात प्रभाकर कन्या ।
वे देखो पाप जात जित-तित-तें, ज्यों मृगराज देख मृगकन्या ।

पोषत दे पयपान पुत्र ज्यों जहो जगजननि धन्य सुधन्या ।
दीयो चहे गदाधर-हू-को चरण-शरण निज भक्ति अनन्या ॥

७६

श्रीयमुना देवे कौन बड़ाई ।
वे गुण रूप नाम हरि जू को, न्यारी अपनी चाल चलाई ।
ऊजड़ देख कियो ध्याताको, तुम परसत तउ कोउ न जाई ।
जो जन तजत तीर तेरे तन, तात तरनी पर भेज चलाई ।
जलको छल करि जनत अधनको, तात तपत निज शीतलताई ।
मानुष श्याम गौरन उज्वल करि, यह सुनिके तउ कोउ न पत्याई ।
मुक्ति-वधू करे दूत-पनो, अधमन-हू-को पान मिलाई ।
यद्यपि पक्षपात पतितनको तदपि गदाधर प्रभुजन भाई ॥

७७

श्रीयमुना पान करत ही रहिये ।
ब्रज बसवो नीको लागत है, लोक लाज दुख सहिये ।
श्रीवल्लभ-श्रीविट्ठल-गिरिधर गावत सब सुख पैये ।
ब्रजपति मुख अवलोकि महासुख दरसन दुख न अघैये ॥

७८

श्रीयमुना-सी नाहीं कोई दुखहरनी ।
जाके स्नानतें पाप मिटत हैं, होत आनन्द सुख-की जु करनी ।
महिमा अगाध अपार, इनको गुण वेद पुराणन बरनी ।
कहत ब्रजपति तुम सबनको यमत्रास छूटे यम-डर जो आवे इनकी शरनी ॥

७९

श्रीगोकुलमें श्रीयमुना राजे ।
ब्रजभक्तनके निज समाजमें, श्रीव्रजराज विराजे ।
जे जन शरण जाय तेरे तट विरमापन ह्वै परहीं ।
दासरसिक कहे तिनहिं कृपा करि, हरि-रस-सों अति भरहीं ।

८०

वृन्दावनमें श्रीयमुना सोहै ।
जिनके गुण अरु शोभा निरखत, मदन मोहन पिय मोहैं ।
सदा संयोग रहत इनहीको, हरि-रस-सों अति पागी ।
रसिक कहे इनके सुमिरनते, हरिचरणन अनुरागी ॥

८१

श्रीयमुना जनको सुखकरनी ।
शरण लेत देवी जीवनके, तिनके कोटि दोषके हरनी ।
पुष्टिभक्तिमें बाधक जो-कछु, ताको खेद भक्तिरस भरनी ।
दास कहे शरनन हों आयो, महाकलिकाल-सिंधु-तें तरनी ।

८२

श्रीयमुना करुणामयी, विनती सुनि लीजे ।
दरशनते पावन सदा सुमिरत अघ छीजे ।
मज्जन तुव जल पावन, मन सुध करि दीजे ।
गावत वेद पुराणमें यमुने सुख जीजे ।
भाव-भगति-वरदायिनि मोकों वर दीजे ।
श्रीविट्ठल-गिरिधरनके गाऊं गुण रसभीजें ।

८३

तपन मिटे देखे भानसुता-तें ।
स्नान करेते कल्मष नासे, गान करेते ज्ञान होय तातें ।
पान करे तें प्रेम प्रकाशे, ध्यान धरत दंपती होय तातें ।
तीर बसे बलवीर हिय आवे, वृन्दावन वैभव है जातें ।
व्रजभूषणते प्रभु जानिके दूर न होय कोई क्षण तातें ।
प्रसन्न होय यमुना जग-तारनि, नंददास गावत है तातें ।।

८४

सबतें श्रीगोकुलको बसबो नीको ।
नितप्रति उठि श्रीयमुनाजल न्हावूं, गुरुचरण परसबो नीको ।
श्रीगोवरधन - श्रीवृन्दावन - गावन के संग बसबो नीको ।
शरद रैनु मधि मदनमोहनजी रास - विलास विलसबो नीको ।
पुरुषोत्तम प्रभु अद्भुत शोभा नैनन भरि - भरि निरखबो नीको ।

८५

लै प्रभुको वसुदेव चले, सो विचार कियो तब नन्द गृहे लों ।
आय कालिन्दीमें ठाड़े भये, वसुदेव डरे जल आयो गरे लौं ।
चरननको यमुना उमही, जल बाढ्यो जबै वसुदेव गरे लौं ।
छुंवत ही यदुनंदनके यमुनाजी बही तरवाके तरे लौं ।

८६

जय जय श्रीयमुना आनन्दकन्दिनी ।
दरस - परस त्रिविध - ताप जात दुखनिकंदिनी ।
अंग - अंग छवि - तरंग शोभासिंधुनी ।
शाहीके अघ कुठार जात जाके वंदिनी ।
अक्षय आनंद गोविन्द अगम गामिनी ।।
हरिदास तट निवास जन्म जन्मनी ।।

८७

प्रकटी सूरज - सुता अधम - उधारनको को कहे महिमा जाकी ।
छठी उजियारी चैत्र मासकी उपजी वेलि सुधाकी ।
पटरानी प्यारी श्रीयमुना श्रीव्रजराज ललाकी ।
रास – विलास महासुखदेनी अद्भुत केलिकलाकी ।
इच्छाराम गिरिधरको जीवन शोभा श्रीमथुराकी ।।

८८

दिनकर - घर आनंद उदित अति, चली सखि आज बधाये ।
प्रकट भयी यमुना जगतारनि, सब मिलि मंगल गाये ।
धन्य कोख संज्ञा रानीकी, ऐसी सुता जो जाई ।
कृष्णप्रिया पटरानी जन्म सुनि, जित - तित बजत बधाई ।
चैत्र मास, शुभ लग्न मुहूरत, छठ गुरुवार उजेरी ।
घुरत निशान, नाचत नरनारी, गावत दे दे हेरी ।
घर - घर मंगल, मुदित भामिनी मोतिन चौक पुरावे ।
ध्वजा पताका कदली रोपत वंदनवार बंधावे ।
अधम - उधारन कारन भूपर भाग्यन है दरसाई ।
महिमा अपरंपार कहा कहौं वेद - पुराणन गाई ।
मज्जन करत हरत अघ - ओघन भक्त मुक्ति - गति देनी ।
मानहु विधि वैकुंठ चढ़नको उभय तट रची है नसेनी ।
शोभा श्रीमथुरा - मंडलकी शरण - शरण हू जाकी ।
माथुर भक्ति पोषत तोषत नित, जिये भरोसे जाकी ।
श्रीविश्राम निकट बहत है, लागत धार सुहाई ।
जाके दरस - परस यम - किंकर, कबहुं न देत दिखाई ।
कीजे कृपा निज दास जानके, मन - वांछित फल पाई ।
इच्छाराम मधुपुरी बसके, जन्म - कर्म - गुण गाई ।।

८९

बधावनो हलो भानुके आज जनमी है जीवन-मूल।
धन्य-धन्य गंगा-कोख सजनी, धन्य-धन्य दिन ए याग।
प्रकटी श्रीयमुना जगतारणि, सफल भये सब काम।
ऋतु वसंत, मधुमास, सुभ दिन, पक्ष पुण्य उजियार।
बीस छठ जन्म लियो सूरज-सुता कुमारि।
धर्यो नाम कलिन्द-नन्दिनी, रूप-गुणकी खान।
महिमा अपरंपार जाकी बरनी वेद-पुरान।
बहत श्रीविश्राम ढिग नित सकल सुखकी रास।
चार पदारथ दान-दाता भक्ति-मुक्ति-अनुसार।
अद्भुत कन्या देखि दिनपति बढ़्यो मन उल्लास।
चले जमुना तीर तपकूं दियो है दिन कर वास।
लिये अरजुन संग यदुपति, सुनत आये धाय।
जानि जियकी दोऊ कर गहि लीनी रथ बैठाय।
तुरत प्रिय पटरानी ब्याही, द्वारका निज धाम।
ढोल, मृदंग, निशान बाजत, गावत मंगल बाम।
चढ़ि विमान मुनि, देव बरखत कुसुम ले ले धाय।
निरखि शोभा नैन फूले, रहे चकित नभ छाय।
नागर कुलमें जन्म मथुरा, वास कीनो आय।
कृपाबल गिरिधरन इच्छाराम जीवन जस गाय।

९०

श्रीयमुनाजी तिहारो दरस हौं पाऊँ।
श्रीगोबरधन श्रीवृन्दावन व्रजरज अंग लगाऊँ।
दिन दस पाँच रहूँ श्रीगोकुल, ठकुरानी घाटपे न्हाऊँ।
दासन ऊपर करो कृपा निज भंजनके गुण गाऊँ।

श्रीयमुनाष्टकम्के प्रस्तुत संस्करणमें प्रयुक्त

पुस्तकोंकी सूची

१. श्रीयमुनाष्टकम्—गो॰ श्रीविट्ठलनाथकृतविवृति एवं उसके गो॰ श्रीहरिरायकृत टिप्पण सहित, सम्पादक-संशोधक, पं॰ श्रीबलभद्रशर्मा, प्रकाशक शुद्धाद्वैत सिद्धान्त कार्यालय, मुम्बई, संवत् १९७२ वि॰, सन् १९१६ ई॰

२. श्रीयमुनाष्टकम—गो॰ श्रीविट्ठलनाथकृत विवृति एवं गो॰ श्रीपुरुषोत्तमकृत उसकी विवृति सहित, सम्पादक-संशोधक, पं॰ बलभद्रशर्मा, प्रकाशक शुद्धाद्वैत सिद्धान्त कार्यालय, मुम्बई, संवत् १९७२ वि॰, सन् १९१७ ई॰

३. श्रीयमुनाष्टकम्—गो॰ श्रीविट्ठलनाथकृतविवृति, गो॰ श्रीहरिरायकृतविवृति-टिप्पण गो॰ श्रीपुरुषोत्तमप्रणीत विवृतिविवृति तथा गो॰ श्रीद्वारकेशकृत विवृतिटिप्पण सहित, सम्पादक-संशोधक, श्रीचीमनलालशास्त्री, प्रकाशक श्रीबालकृष्ण शुद्धाद्वैत महासभा कार्यालय, सूरत, वि॰ सं॰ १९८५.

४. श्रीयमुनास्तोत्ररत्नाकरः—श्रीलल्लूभाई छगनलाल देसाई, ४७, गाँधी रोड, अमदाबाद द्वारा संशोधित तथा प्रकाशित, द्वितीयावृत्ति संवत् १९९१ वि॰

५. श्रीयमुनाजीके ४० पदः—प्रकाशक-श्रीमदनमोहन पुस्तकालय श्रीराधामोहन कुंज, ३२/३६ कालभैरव, बनारस, संवत् २०१४ वि॰

६. बृहत्स्तोत्रसरित्सागरः—प्रकाशक-मुद्रक, श्रीमणिलाल इच्छाराम देसाई मुम्बई, संवत् १९८३ वि॰ सन् १९२७ ई॰

७. श्रीयमुनाष्टकद्वयम्—श्रीशङ्कराचार्यकृत, श्रीराधाचन्द्रकृत संस्कृत-हिन्दीटीका-सहित, निर्णय-सागर प्रेस, सन् १९३० ई॰

८. स्तोत्ररत्नावली—हिन्दी-अनुवाद सहित, प्रकाशक-गीताप्रेस गोरखपुर, नवम संस्करण संवत् २००६ वि॰